कांगड़ा - हृदय - सम्राट्

महाराजा संसारचन्द

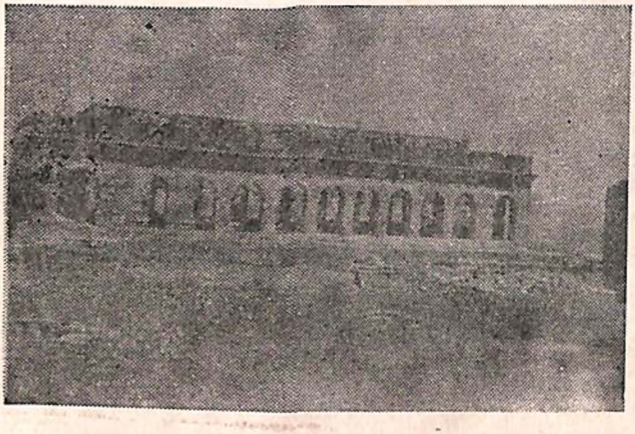

H
954.52
G 959 L

H
954.52
G959L

कांगड़ा - हृदय - सम्राट्

महाराजा संसारचन्द

1. Approved for all Colleges, all Schools and all Libraries by D. E., H. P. Govt. Shimla Vide letter No. Edn.—H (8) (6) 1/82—4, dt. March 1993.
2. Richly reviewed by the Dainic Tribune.
3. All India Radio, Shimla (H. P.) broadcast the author's talk on the Life of Maharaja Sansar Chand.

★

लेखक (अध्यापक) एवं प्रकाशक
ओम गुप्त

@ ओम गुप्त

1992

...an Institute of Advanced S...
ACC NO. 111427
DATE 13/3/03
SHIMLA

किताब मिलने का पता :—

1. O. K. GUPTA
   Vill. Tharoo, P.O. Nagrota Bag
   Phone :

Library IIAS, Shimla
H 954.52 G 959 L
00111427

2. SHARMA NEWS AGENCY
   Nagrota Bagwan, (Kangra) H.P.

3. MR. NARAIN KUMAR GUPTA
   Sujanpur Tira (Hamirpur) H.P.

4. O. K. GUPTA
   9 D/1, N.P.L. Colony, New Rajinder Nagar,
   New Delhi

H
954.52
G959L

मूल्य : 40-00

मुद्रक : सुधीर प्रिंटर्स, 151, देश बन्धु गुप्ता मार्किट, करोल बाग,
नई दिल्ली-110005
दूरभाष : 522683

प्राक्कथन

कांगड़ा क्षेत्र ऐतिहासिक दृष्टिसे बहुत महत्वपूर्ण है। पर्याप्त समय तक इस भू-भागका नाम त्रिगर्त रहा। कुछ विद्वान रावी, व्यास तथा सतलुज नदियोंके मध्य के क्षेत्रको त्रिगर्त कहते हैं परन्तु त्रिगर्त की भोगोलिक सीमा समय-समय पर बदलती रही है और त्रिगर्त षष्ठ के नाम से छः त्रिगर्त क्षेत्रों का उल्लेख भी मिलता है। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ऋग्वेद में वर्णित दिवोदास—शाम्बर को जो उदब्रज नामक स्थान पर लड़ा गया था, प्राचीन कांगड़ा क्षेत्र से सम्बन्धित मानते हैं। अपनी पुस्तक, ऋग्वैदिक आर्य, में उन्होंने लिखा है कि यह युद्ध सम्भवतः नूरपुर के निकट किसी स्थान पर लड़ा गया होगा। वे इसके लिए तर्क प्रस्तुत करते हैं कि तीन हजार वर्ष पहले का उदब्रज स्थान कालान्तर में लोक-भाषामें 'धमेरी' बन गया होगा। प्राचीन त्रिगर्त की राजधानी संम्पादलक्ष, 'स्यालकोट', बताई जाती हैं। कांगड़ा जालन्धर प्रदेशका भाग रहा, इसके भी प्रमाण उपलब्ध हैं।

कांगड़ा का इतिहास बहुत प्राचीन तथा रोचक है। इस वीर प्रसवा भूमिमें अनेक योद्धा अवतीर्ण हुए हैं। कटोच वंश यहां का शताब्दियों पुराना राजवंश है। यद्यपि, इस वंश के आरम्भिक राजाओं का सुविस्तृत विवरण इतिहास-ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं है और वंशावली में मात्र राजाओं के नाम दिए गए हैं परन्तु वंशावली तथा किंवदन्तियोंके अनुसार यह बात स्पष्ट होती है कि महाभारतके युद्धमें कौरवोंकी ओर से लड़ने वाले सुशर्मचन्द्र का स्थान इस वंशावलीमें 234वां रहा सुशर्मचन्द्र तथा उसके भाईयों ने महाभारत युद्ध में प्रतिज्ञा की थी कि जब तक वे विजय प्राप्त नहीं करेंगे तब तक कुछ शर्तोंका पालन करेंगे जिनमें पृथ्वी पर सोना तथा थाली में भोजन न करना सम्मिलित थीं। यही कारण है कि महाभारत में उन्हें, 'संसप्तक', भी कहा गया है।

कटोचवंश के अनेक राजा अपने योगदान तथा शौर्य के लिये प्रसिद्ध

हुए। इनमें कलाके पोषक, युद्ध-विद्या में विशारद तथा संतुलित व्यक्तित्व के धनी महाराजा संसारचन्द का जन्म सन् 1765 ई० में जयसिंहपुर के समीप वीजापुर नामक स्थान पर हुआ। संसारचन्दके पिता तेगचन्द के देहावसान के सपय उनकी आयु केवल दस वर्ष की थी। महाराजा संसार-चन्द ने कांगड़ा के दुर्ग पर अधिकार करने के अनन्तर सन् 1785 ई० के पश्चात् लगभग 20 वर्ष तक सतलुज और रावीके वीचके क्षेत्र में शक्ति-शाली राज्य की स्थापना की। वे चम्बाके राजा राजसिंहसे नेरटी नामक स्थान पर समरांगण में भिड़े। इसी स्थान पर राजा राजसिंह अपने 45 अंगरक्षकों के साथ वीरगति को प्राप्त हुए। सन् 1692 में महाराजा संसार चन्दने मण्डी पर आक्रमण किया और उसके कुछ भाग को अपने अधिकार में ले लिया। मण्डी अवयस्क नरेश ईश्वरी सेन संसार चन्दके संगरक्षण में लगभग बारह वर्ष तक सुजानपुर टीहरामें रहे। सुकेत के राजा के भाई किशनसिंह की पुत्री से संसार चन्द परिणय-सूत्र में बंधे। अतः इस राज्यके साथ संसार चन्द के सम्बन्ध अच्छे रहे। परन्तु चम्बा, नूरपुर, कुल्लू, मण्डी, हरिपुर गुलेर, सीबा, दातारपुर आदि राज्यों के साथ सम्बन्धों में कटुता तथा समता का चक्र अनवरत चलता रहा। कहलूर राज्य पर संसार चन्दने दो वार आक्रमण किया और सतलुज के वाऐं किनारे के क्षेत्र पर अधिकार किया था। सन् 1820 ई० में विलियम मूरक्राफ्ट महाराजा संसार चन्द के अतिथि के रूप में रहे। मूर-क्राफ्टने लिखा है कि महाराजा संसारचन्दको महाराजा रणजीत सिंहसे यह आशंका रहती थी कि वह उसके राज्यको क्षति पहुंचायगा। विवरण के अनुसार महाराजा संसारचन्द का अधिकार क्षेत्र उस समय कांगड़ा भू-भाग तक ही सीमित था और उसकी लम्बाई उत्तर से दक्षिण तक 40 कोस तथा चौड़ाई पूर्वसे पश्चिम तक 15 से 40 कोस के बीच थी। रियासत की उस समय 35 (पैंतीस) लाख रुपये से कम होकर लगभग 70.00 (सत्तर) हजार थी।

कुछ भी हो, राज्यों के उत्थान-पतन ऐतिहासिक घटनाएं होती हैं परन्तु उनके योगदान का आकलन बाद में किया जाता है। संसार चन्दके

दरबार में अनेक चित्रकार और संगीत प्रेमी रहते थे। पहाड़ी चित्रकला का संरक्षण तथा उत्थान महाराजा संसार चन्दकी अमूल्य देन है। विलियम मूरक्राफ्ट ने लिखा है कि महाराजा संसारचन्द प्रातः दस बजे तकका समय पूजा-अर्चनामें व्यतीत करते थे और तत्पश्चात् दोपहर तक राज्यके कामकाज करके दो-तीन घण्टे विश्राम करते थे। सायंकाल का समय नृत्य-गायन तथा अन्य कलाओं के अध्ययन-अवलोकन में बीतता था।

सन् 1806 ई० में गोरखा सेनाने कांगड़ा दुर्गको घेर लिया। यह घेरा 1809 ई० तक चला। महाराजा रणजीत सिंह ने कांगड़ा का दुर्ग अपने अधिकार में लेने की शर्त पर महाराजा संसार चन्द को सहायताका आश्वासन दिया, जिसके परिणाम स्वरूप गोरखों को सतलुज पार के क्षेत्र में भगा दिया गया। मई 1806 में गोरखों की सेनाने सतलुज नदी पार की ओर कहलूर क्षेत्र के उस भाग में प्रवेश किया, जिसे संसार चन्द ने कहलूर से छीना था। वर्तमान हमीरपुर जिला महलमोरी नामक स्थान पर अमर सिंह थापा की मुठभेड़ कांगड़ा की सेना से हुई और गोरखोंने कांगड़ा की फौज को पीछे धकेल दिया। गोरखा सेनाने दीर्घकाल तक कांगड़ा के दुर्ग को घेरे रखा। कांगड़ा के दुर्ग में संसार चन्द का बेटा अनिरुद्धचन्द तथा अन्य अधिकारी उपस्थित थे। एक अन्य गोरखा सरदार भक्त थापा ने सुजानपुर टीहरा पर सितम्बर 1806 में अधिकार कर लिया।

कांगड़ा दुर्ग के बाहर गोरखोंके साथ लड़ाईयां हुई। अमरसिंह थापा ने तीन वर्ष तक दुर्ग पर घेरा रखने के बाद उसे महाराज रणजीत सिंहके हस्तक्षेप के बाद छोड़ दिया। महाराजा रणजीतसिंह और महाराजा संसार चन्द के मध्य 20 जुलाई 1809 को ज्वालामुखी के स्थान पर एक सन्धि हुई, जिसके अनुसार गोरखों को सतलुज और यमुना के पार भगाए जाने, लाहौर दरबार को कांगड़ा का दुर्ग तथा कुछ क्षेत्र आदि दिए जाने की शर्तें थीं।

मानव जीवन में उतार चढ़ाव आते रहते हैं, परन्तु युग-पुरुष अपनी

अमिट छाप इतिहास तथा लोकजीवन पर छोड़ते चले जाते हैं। महाराजा संसार चन्दके जीवन तथा उपलब्धियों पर श्री ओम गुप्त द्वारा लिखित पुस्तक, 'कांगड़ा-हृदय-सम्राट महाराजा संसारचन्द', एक सामयिक दस्तावेज हैं। लेखकने पुस्तक को मुख्य रूपमें चार अध्यायों में विभक्त किया है, जिसके प्रथम अध्याय में महाराजा संसारचन्दके जन्म, शिक्षा, शासन तथा सुजानपुर टीहराकी महिमा के सम्बन्ध में यथा-तथ्य विवेचन प्रस्तुत किया है। द्वितीय तथा तृतीय अध्यायों में कटोचवंशका जन्म एवं इतिहासमें स्थान, इस वंशके राजाओं की शासन व्यवस्था तथा तत्कालीन लोक-जीवन और परम्पराओंका संक्षिप्त उल्लेख किया गया है। चतुर्थ अध्यायके अन्तर्गत कांगड़ा चित्रकला शैली, चित्रकार गुलाबू के सुपुत्र के साथ भेंट, कांगड़ा दुर्ग, सुजानपुर टीहराकी एतिहासिक होली, महाराजा संसारचन्दके परिवार का जीवन तथा पर्यटन की सम्भावनाओं पर सामग्री प्रस्तुत की गई है। पुस्तक के परिशिष्ट में हिमाचल का हरिद्वार, कोटला के दीवान तथा सिद्ध बावा स्वरूप गिरका संक्षिप्त किन्तु आकर्षक विवरण प्रस्तुत किया गया है। लेखकने भूमिकामें ही स्पष्ट कर दिया है कि उन्हें सुजानपुर टीहरा तथा कांगड़ा - हृदय - सम्राट् महाराजा संसारचन्दके जीवन-वृत्त तथा उपलब्धियों के प्रति गहरी आस्था है। उनका यह ग्रन्थ एक संवेदनशील साहित्यकार तथा जिज्ञासुकी डायरी है। पुस्तकमें संसारचन्दकी राजधानी सुजानपुर टीहरा की वर्तमान स्थिति के सन्दर्भमें बिचार मूल्यवान हैं। इससे पर्यटकों तथा भावी पीढ़ियोंको इस नगर गरिमाका आभास की मिलेगा।

पुस्तकमें प्रस्तुत सामग्री परिचयात्मक है और इस में ऐतिहासिक तथ्यों की पुष्टि की ओर लेखक का ध्यान अपेक्षाकृत कम आकृष्ट हुआ है। परन्तु जिस उद्देश्य व निष्ठासे सामग्री को संजोया गया है, उसके लिये श्री ओम गुप्त बधाई के पात्र हैं और उनका यह प्रयास सार्थक होगा, इसमें संदेह नहीं।

सम्वत् 2048
मुख्य सचिव निवास,
शिमला

कृष्णचन्द्र शर्मा, I.A S.
Principal Secretary
to Chief Minister and
Secretary Tourism, Shimla (H.P.)

लेखक का परिचय

त्रिगर्तप्रान्तके हृदयसम्राट्, 'महाराजा संसारचन्द कटोच', की इस भव्य जीवनी के लेखक, 'श्री ओम गुप्त,' (Pen name of O. K. Gupta) उन्हीं महान महाराजाकी राजधानी सुजानपुर टीहराके जो कि हिमाचल प्रदेशके अन्यतम उपमण्डल हमीरपुर की सीमापर बह रही पावन विपाशा (ब्यास) नदीके पुण्य तटपर स्थित है, निवासी हैं।

आपका जन्म 1936 में इसी नगरी में हुआ। आरम्भिक शिक्षा दीक्षा इसी नगरीके डिस्ट्रिक बोर्ड आदर्श मिडल स्कूल एवं प्रख्यात महाराजा संसारचन्द सनातन धर्म उच्च विद्यालय (अब राजकीय वरिष्ठ विद्यालय) में होकर आपने डी०ए०वी० कॉलेज जालन्धर से सनातकपूर्व एवं राजकीय महाविद्यालय धर्मशाला (कांगड़ा) से सनातक की उपाधि प्राप्तकी। तत्पश्चात् भारत सरकारके केन्द्रप्रशासित राज्य अण्डमान एवं निकोबार द्वीप समूहमें भाषाध्यापकके रूपमें आपकी नियुक्ति हो गई जिसे आपने अपनी जनसेवाकी सहज भावनामें अनुकूल पाकर सहर्ष शिरोधार्य किया और एक दम वहां पहुँचकर द्वीपवासियों की सेवामें अपने आपको समर्पित कर दिया। कई वर्षोंतक वहां की विभिन्न शिक्षा संस्थाओं में कार्यरत रहे।

इन नियुक्तिने आपको इन दीपोंमें बसी हुई जनजातियों के जीवन, रहन-सहन, चिरन्तन, परम्पराओं और रीति रिवाजों से गुथी हुई संस्कृति का समीपसे निरीक्षण करनेका सुनहरा अवसर प्रदान किया जिसके फलस्वरूप, 'मानवके मानव', 'पात्ती ननकौरी द्वीपसे', जैसी पुस्तकों की रचना आपके द्वारा हो पाई, जिनमें द्वीपवासियोंकी सभ्यता और संस्कृतिका प्रतिपादन विशद और रोचक शैलीमें हुआ है और जो हिमाचल सरकार द्वारा स्वीकृत हैं।

इन पुस्तकरत्नोंके प्रतिभाशाली लेखककी नवीन रचनामें जो आपके करकमलोंकी शोभा दे रही है, त्रिगर्त भूमिके वीर शिरोमणि महाराजा

संसारचन्द कटोचके, जिन्होंने कांगड़ा प्रान्तके शौर्यकी धाक दिग्दिगान्तरोंमें जमा दी थी, भव्य और पावन जीवनका सुन्दर सलिल भाषामें वर्णन हुआ है। लेखकने स्वनामधन्य महाराजाके जन्म, शैशव, शिक्षा-दीक्षा, उत्कट यौवन, सहजवीरता और ओजस्विताके रोचकतापूर्ण वर्णनके साथ-साथ प्रसंगसे कोट कांगड़ा, राजधानी सुजानपुर टीहरा और भलेठके प्रवेश द्वार आदि की प्राकृतिक महिमा का भी विस्तृत विवरण दिया है। प्रख्यात कटोच वंशके सुनहरे इतिहास पर प्रकाश डालते हुए इसके शासन प्रबन्ध सैनिक व्यवस्था और न्याय प्रणालीका सविस्तार प्रतिपादन किया है साथ ही साथ कांगड़ा चित्रकला (Kangra-School-of-Painting) का सम्यग् दिग्दर्शन कराया गया है।

एतदतिरिक्त कई अन्य वर्णय विषयोंको सुमनोहर रचना शैलीमें ग्रथित किया गया है।

हमें पूर्ण विशस है कि योग्य लेखककी कृतिका जिससे त्रिगर्त प्रदेशके इतिहासकी पर्याप्त झलक मिलती है, पाठकों द्वारा समुचित आदर किया जायेगा और हिमाचल सरकारके कला, संस्कृति एवं भाषा ऐकादमी द्वारा भी इस पुस्तक मणिको अपने अधिकारमें लेकर प्रकाशन कराया जायेगा और इसकी प्रतियां प्रदेशके पुस्तकालयोंमें रक्खी जायेंगी।

चरणदास
शास्त्री; एम० ए०; बी० टी०
प्रध्यापक सनातनधर्म महाविद्यालय
नगरोटा वगवां (हि० प्र०)

विषय सूची

प्राक्कथन			i
लेखक का परिचय			vii
भूमिका			ix
अध्याय-1—	1.	महाराजा संसारचन्द का जन्म	1 से 17
	6.	सुजानपुर टीहरा का नामकरण	
	2.	बचपन एवं शिक्षा	
	3.	यौवन एवं राजगद्दी	
	4.	महाराजा एवं स्वर्ण युग	
	5.	कोट कांगड़ाका परिचय	
	7.	राजधानी सुजानपुर और टीहरा की महिमा	
	8.	टीहराके राजमहल एवं प्राकृतिक दृश्य	
	9.	भलेठका प्रवेशद्वार	
अध्याय-2—	10.	कटोच वंशका जन्म एवं इतिहास में स्थान	18 से 21
	11.	कोट कांगड़ा	
	12.	कटोचोंका अकंटक राज्य	
	13.	अकबर, कांगड़ा और औरंगजेब	
अध्याय-3—	14.	कटोचोंकी शासन व्यवस्था	22 से 32
	15.	राजा, मन्त्री, दीवान, कोतवाल, कानूनगो	
	16.	सैनिक व्यवस्था	
	17.	न्याय और शान्ति	
	18.	जाति एवं विवाह बंधन	
अध्याय-4—	19.	कांगड़ा-चित्र-कला शैली	33 से 51
	20.	स्व० गुलाबू राम के पुत्र पूर्णचन्द से एक भेंट	
	21.	अभेद्य कांगड़ा महादुर्ग	
	22.	महाराजा संसारचन्दका परिवार	
	23.	सुजानपुर टीहरा की ऐतिहासिक होली	
	24.	सुजानपुर नगरका आधुनिक रूप	
	25.	पर्यटकों से	
परिशिष्ट	26.	हिमाचल का हरिद्वार	52 से 54
	27.	दीवान कोटलाके	
	28.	सुजानपुर के जैन परिवार	

समर्पण

समर्पित हैं ये शब्द उस वन्दनीय, उदार हृदया, स्नेहमयी मातृगोद को जिसकी गरिमां में महाराजा संसारचन्द जैसे शिशु पले, पोषित होकर बड़े हुए और हिमाचल प्रदेश जैसी देव भूमिकी अनूठी संस्कृतिमें वेजोड़ योगदान दिया जिसका यशोगान इतिहास आज भी करता है।

आभार

हिमाचल कला, संस्कृति एवं भाषा अकादमी शिमला द्वारा एक हजार रुपये का अनुदान प्रकाशनार्थ प्रदान किया गया।

भूमिका

जिस नगरी सुजानपुर टीहरा में जन्मा, बचपन बीता और बड़ा हुआ उस नगरीके इतिहास एवं संस्कृति के बारे में जाने अनजाने छुट-पुट कड़ियोंके अतिरिक्त मैं कुछ भी नहीं जान पाया था। सुजानपुर के मन्दिरों में कई बार गया था कभी अकेला तो कभी मित्रों, सज्जनोंके साथ और भगवान बंशी वाले एवं नर्मदेश्वरके दर्शन कर, घूम फिर कर लौटता रहा। यहां लगने वाला होली का मेला कई वर्ष लगातार जी भर कर देखा। टीहराकी पहाड़ी पर भी कई बार चढ़ा और गौरी शंकर मन्दिर एवं बाहरः दरी और महाराजा के महलोंको घूम फिर कर देखकर लौटता रहा, कभी अकेले तो कभी साथियों एवं घरवालों के साथ। कभी-कभी तो मैं अपने सहपाठी-मित्र के साथ रात को वहीं ठहर भी जाया करता था और रातके घोर सन्नाटेके वातावरण में टीहराका अंकन किया करता था। चाहे ठिठुरती सर्दी में बसन्तर्तु के आगमन पर बसन्त पंचमी को लगने वाला मेला भी मैं यहां आकर देखा करता था और पीले कपड़े धारण किए छोटे-बड़े सभी लोगोंको यहां उल्लसित कूदते, खेलते, घूमते फिरते देखा करता था। किन्तु मनमें यह बात कभी न आई कि यहां का भी कोई प्रतापी राजा था। बस घूम फिर कर लौट आना होता था। बचपन में व्यास नदी में कई बार मित्रों के साथ स्नान किया था। किश्ती में बैठकर कई बार उसे पार कर, आलमपुर में भी कई बार गया। यहां तक कि लम्बाग्राम होते हुए कुली द्वार के मेलेमें, जयसिंहपुर भी गया। गर्मियोंमें बीजापुर ग्राम के सीता-राम मन्दिर को भी बचपन में जो एक बार देखा था, उसकी भव्यता मन में आज तक अंकित है किन्तु यह लेशमात्र भी आभास नहीं थी कि मैं महाराजा संसारचन्दकी जन्म स्थली में घूमकर आ गया हूं। स्थानीय डिस्ट्रिक्ट बोर्ड आदर्श मिडल स्कूल में पढ़ते समय महाराजा संसारचन्दके बारे में कुछ-कुछ चर्चा कानों में आने लगी थी। जब स्व० तुलसीराम नाग (सुजानपुर निवासी) ने स्थानीय, 'महाराजा

संसारचन्द सनातन धर्म हाई स्कूल", की स्थापना की तो उसमें प्रवेश पाने पर स्पष्ट हो गया कि राजा संसारचन्द कितना वैभवशाली राजा हुआ है। कथित हाई स्कूलके पुस्तकालय में जीर्णोद्दार किए गए नवीन कांगड़ा-चित्र-शैलीके चित्र कई बार ध्यान से देखे और समझ में आने लगा कि यह बेजोड़ कला किस पारखी ने पाली और पोषित की। यह सब कुछ देख, घूम फिर कर कई बार मनमें आया कि कांगड़ा हृदय सम्राट्—महाराजा संसारचन्दके विषय में कुछ प्रकाशन हो। कांगड़ा भी कई बार गया, दुर्ग भी देखा, वज्रेश्वरी मन्दिर भी देखा। लोगों से सम्पर्क भी किया और काफी कुछ जानकारी उपलब्ध हुई। स्व० केसरी लाल वैद्य, नगरोटा बगवां निवासीके सम्पर्क में आने पर काफी सामग्री हाथ लगी। उनके परामर्श पर ही मैंने आकाशवाणी केन्द्र शिमला (हि०प्र०) को भी महाराजा संसारचन्द पर एक वार्ता प्रेषित की जो तुरन्त प्रसारित भी हुई। मैंने कई पत्र-पत्रिकाओं, विद्वानों की पुरानी कृतियोंमें भी झांकने का प्रयास मात्र किया है। फोटोग्राफी मेरी हॉवी रही है। अतः यहां दिए चित्र मेरे अपने हैं। सामग्री संकलन हित कई यात्राएं भी कीं। यहां निरीक्षण मेरे निजी हैं।

कालके थपेड़ों से जो कुछ भी सामग्री बची और हाथ लगी उसीका प्रयोग करने की चेष्टा मैंने की है। जन-साधारण विशेष रूपसे नई पीढ़ी एवं पर्वत-पर्यटन में रुचि रखने वाले शैलानियों के ज्ञानमें यदि वृद्धि हुई तो मैं अपने इस प्रयास को सफल समझूंगा।

जिन मित्रोंने इस पुस्मक के निर्माण में हाथ बढ़ाया है उनका मैं आभारी हूं।

अन्तमें सभी के सुझावों का आदर है।

ओम गुप्त

अध्याय—1

कटोच राज्य के परमशक्ति सम्पन्न, पिता तेगचन्द, कटोच वंशजके हां जनवरी, 1765 में, हिमाचल प्रदेशमें जिला कांगड़ा स्थित बीजापुर नामक कस्बेमें एक बालक ने जन्म लिया। क्या पता था कि यह पुत्र-रत्न आगे चलकर अपने दादा घमण्ड चन्द की तेजस्विताको सार्थक कर आगे चलकर इतिहासमें कांगड़ा-हृदय-सम्राट् महाराजा ससार चन्दके नाम से प्रख्यात होगा। कथित कस्बा बीजापुर व्यास नदीके शान्त सुरम्य तट पर बसा हुआ है। बचपनके आरम्भिक पांच वर्ष (महाराजा) संसार चन्द के इसी पुण्य भूमिमें व्यतीत हुए। किन्तु संसार चन्द अभी दस वर्ष के ही थे कि इनके पिता स्वर्ग सिधार गये।

बालक संसारचन्द की शिक्षा का उत्तरदायित्व पूर्णरूपेण अपने पुरोहित पर ही रहा। एक भवन के एकान्तमे शिक्षा का यह कार्य चलता रहा। उस पुरोहित ने हिन्दीमें ससारचन्दको शिक्षा दी और 'टांकरी', लिपिका ज्ञान करवाया। रामायण और महाभारत जैसे उच्चकोटिके महाकाव्योंके प्रसंगोने भी उनके हृदयपर गहरी छाप छोड़ी थी। इन प्रसंगोने सोने पर सुहागेका गहरा काम किया क्योंकि कटोचवंशरक्त-शुद्धता एव शौर्य, सम्मानके लिये इतिहासमे प्रसिद्ध है। वैज्ञानिक दृष्टि से भी वशगत एवं पितृगुण भावी सन्तान मे परिस्फुटित होते आए हैं। महाराजाके पूर्वज शौर्यके धनी कटोच-वशज होनेके फलस्वरूप उनके लिए प्रेरणा एव साहसके निरन्तर स्रोत बने। ससारचन्द हिन्दू धर्म निष्ठ और पूजा-पाठमे अगाध आस्था रखते थे। पूजा के लिये उनके पास शक्तिकी देवी मा दुर्गाकी चादीकी मूर्ति थी। वीर वंशमें जन्मा संसार चन्द युद्ध कौशलमे अत्यन्त प्रवीण था। यद्यपि संसारचन्दकी शिक्षा इतनी विस्तृत रुपमें नहीं हुई क्योंकि मात्र दस वर्षकी अल्प आयुमें ही उनके परम स्नेही पिता उन्हें छोड़कर परलोक सिधार गये और राज्य का भार उनके कंधों पर आ पड़ा जिसे उन्होंने बड़े साहस एवं वीरता के साथ संभाला जिसकेलिये अच्छा परामर्शदाता उनका कोई न कोई अवश्य रहा होगा।

बचपनमें जिस परिचारिका (दासी) ने उनकी सेवा की थी संसार चन्द उस दाईका बहुत आदर किया करता था। उसकी स्मृति में, 'दाईका टियाला (चबूतरा)' पलम में उन्होंने निर्मित करवाया था।

अपने पिताकी मृत्युके बाद अपने तीनों भाईयोंमें सबसे बड़े होने के फल स्वरुप वे दस वर्षकी आयु में (1774) में राज-गद्दीपर बैठे। उस समय मुग़ल राज्यकी नींव हिल चुकी थी किन्तु कांगड़ाका प्रसिद्ध ऐतिहासिक दुर्ग अभी मुग़ल सामन्त सईफ अली खां के हाथ में ही था। उन दिनों सिख अपनी शक्ति बढ़ा रहे थे और लूट पाट एवं अराजकता में व्यस्त थे। तब एक सरदार जस्सा सिंह रामगढ़िया ने एक हमले में कांगड़ा, चम्बा और नूरपुर राज्यों पर अपना अधिकार जमा लिया। किन्तु जयसिंह कन्हैया की सहायता से, अपने शासन के आरंभिक एवं प्रथम चरण में ही, अपने पुर्खोंकी धरोहर कांगड़ा दुर्ग को जस्सा सिंह रामगढ़िया की फौजको हराकर जीत तो लिया किन्तु छल द्वारा जयसिंह कन्हैया ने कांगड़ा दुर्ग हथिया लिया और चार वर्ष तक अपने अधिकार में रखने के बाद उसे लौटा दिया जब वह महाराजा की सेनाओं द्वारा पराजित हुआ। बताया जाता है कि यह अपूर्व विजय संसार चन्दने अपने राज्य के दूसरे भाग के शासन कालमें 23 कार्तिक संवत् 1837 को प्राप्त की। इसके साथ ही संसार चन्दको कांगड़ा नगर एवं प्रान्तपर भी विजय प्राप्त हो गई। वर्षोंबाद भी मज़बूत कांगड़ा दुर्ग, जो राज्य-शासनका अभेद्य कवच माना जाता रहा है; कटोच वंश के फिर हाथ आ गया। संसार चन्दने जब अपने राज्य के शासन काल के तीसरे भाग का शुभारम्भ किया और अपने सैन्यबल को नये सिरे से गठित किया तथा कुछ ही समयमें पहाड़ीके सभी बाईस राजाओं पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। वे सभी राजे संसारचन्दके दरबार में आने लगे और अधीनताके सूचक, 'कर' भी देने लगे। इस समय संसार चन्द की ख्याति दूर-दूर तक फैलने लगी और वे 'महाराजा संसारचन्द', के नामसे प्रसिद्धि पाने लगे। उनका दरबार राजाओं और बाहर के लोगों के अतिरिक्त चित्रकारों से भी भरा रहता था।

मि० वार्नस्के शब्दोंमें, "और इस तरह महाराजा संसारचन्दको वह ख्याति प्राप्त हुई जो उनके किसी पूर्वज को कभी न नसीब थी। बीस वर्ष तक उनका एक छत्र शासन चलता रहा। किसी को यह साहस न हुआ कि उनकी इच्छा का विरोध करे।" महाराजाका यह शासन काल इतिहासमें, 'स्वर्णयुग', के नामसे प्रसिद्ध है।

कांगड़ा का क्षेत्रफल उन दिनों (9978) वर्ग मील तक था और राज्य की वार्षिक आय (35) लाख रुपये तक थी। इसका पुराना नाम 'भीम नगर, नगर कोट, भीमकोट और त्रिगर्त', भी था। विशाल कांगड़ा राज्य की वंशावली में पांच सौ राजाओं के नाम आते हैं जिनमें महाराजा संसार चन्द का (481) वां स्थान आता है जिसकी उत्तर-पश्चिम दिशा में चम्बा, उत्तर में भारत का मुकुट एवं 'स्विट्जर लैंड', काश्मीर, पूर्व में तिब्बत, दक्षिण पूर्व में बुशहर का इलाका, दक्षिण में हिमाचल प्रदेश की राजधानी शिमला के कोटगढ़ आदि के ग्राम तथा कुम्हार सैंन, संगरी, सुकेत, मंडी और विलासपुर हैं।

अपने शासन के आरंभिक दिनों में संसार चन्द अपना दरबार, नादौन कस्बे', में लगाया करते थे। नादौन सुजानपुर टीहरा से पन्द्रह मील की दूरी पर स्थित है। 'आए नादौन तो जाय कौन ?' ऐसी अद्भुत रौनक थी उस समय कस्बा नादौन की। वहां बने महलों के भग्नावशेष अभी भी महाराजा के वैभव को बोलते हैं।

नगरकोट अथवा कोट कांगड़ा के सुदृढ़ राज्य से अधिकारच्युत होने पर महाराजा संसार चन्द, 'आलमपुर', में रहने लगे थे। आलमपुर कटोच वंश के 474वें राजा आलम चन्द ने बसाया था जो व्यास नदी के दाएं तट पर स्थित है और अभी भी जिला कांगड़ा क्षेत्रमें आता है जब कि व्यास नदी के इस पार (बाएं पर) बसा सुजानपुर टीहरा अब नव-गठित जिला हमीरपुर का भाग है। कथित दोनो कस्बों को मिलाने वाला व्यास नदी पर नवनिर्मित पक्का पुल है।

यदि कस्बा सुजानपुर और ऊंची पहाड़ी पर बसे, 'टीहरा', की

नींव दादा घमण्ड चन्दने एक साथ ही डाली थी तो महाराजा संसार चन्दने इन्हें योजनाबद्ध रुप देकर परमविकसित किया। महाराजा संसारचन्द, रणजीत सिंह के समकालीन थे। रणजीतसिंहने सुन रखा था कि सुजानपुर टीहरा का राजमहल अत्यन्त सुन्दर है। महाराजा संसारचन्द इसे दिखान नहीं चाहते थे क्योंकि नगरकोटका मजबूत दुर्ग, छल द्वारा रणजीत सिंह ने उनसे हथया लिया था। जब रणजीत सिंहने कथित राजमहलको देखना चाहा तो संसार चन्दने पहले ही इसके कुछ भाग गिरवा दिये ताकि राजा रणजीत सिंह इसे पसंद न कर पाए।

सुजानपुर टीहरा का नामकरण :—

किसी स्थान विशेष का नाम उसकी भौगोलिक स्थिति, समाज, संस्कृति अथवा इतिहास से जुड़ा होता है। ऐसे ही विद्वानों का मत है कि सुजानपुर नगर के लोग बड़ी सरल, सज्जन प्रकृतिके थे। अतः नगरका नाम, सज्जनपुर था जो स्थानीय पहाड़ी बोली में बिगड़ते-बिगड़ते 'सुजान पुर', हो गया। किन्तु कुछ विद्वानों का मानना है कि सुजानपुर नगरीको विद्वानों की नगरी होने का श्रेय प्राप्त हुआ। इसी कारण इस नगरीका नामकरण, सुजानपुर हुआ जिसका शब्दार्थ भी यही स्पष्ट करता है।

ऊपर कथित सुजानपुर नगरीके नामकरण के दोनों आधार अपनेमें सशक्त हैं क्योंकि विद्वत्ता से मानव प्रकृति अलग नहीं की जा सकती। फिर भी दूसरा तर्क अधिक न्याय संगत लगता है। ऐसे ही, 'टीहरा', ऊंचे टीहले पर बसा हुआ है। समझा जाता है कि ऊंचे टीहले पर बसा होने के कारण ही स्थानीय कांगड़ी बोली में, (टीहला) टिल्ला से बिगड़ते-बिगड़ते, 'टीरा', बन गया जिसका परिष्कृत रूप हिन्दी में, 'टीहरा', है और यही नाम न्याय संगत भी लगता है। कुछ भाषाविद्, 'टीहरा', का शब्दार्थ, 'बड़ी बस्ती', से करते हैं जो अपने में एक सशक्त प्रमाण नहीं लगता।

कांगड़ी बोली सीधी हिन्दी के आस पास है जिसे हिन्दी का ज्ञाता बड़ी सरलता से समझ सकता है। अब हिमाचल प्रदेश सरकार के सतत् प्रयासों से पहाड़ी (बोलियों) को देवनागरी लिपिमें लिपिबद्ध किया जा

रहा है और पहाड़ी साहित्य का सृजन भी हो रहा है ।

महाराजा संसारचन्द के समय में पहाड़ी बोली टांकरी में लिखी जाती रही है । राजकीय आदेश टांकरी में ही दिये जाते थे और व्योपारी अपना वहिखाता टांकरी में ही लिखते थे जिसका वे आजतक प्रयोग करते चले आ रहे हैं ।

कागजों में सुजानपुर और टीहरा, दोनोंका संयुक्त रुपसे प्रयोग कर, यह नगरी अब 'सुजानपुर टीहरा', के नामसे प्रसिद्ध हैं ।

राजधानी सुजानपुर और टीहरा की महिमा : –सुजानपुर कस्वा चारों ओर ऊंची उठती हरी भरी सीढ़ीदार खेतों से भरी घाटियों से घिरा बीच में हरा भरा समतल ऐकड़ों में फैला, दर्शनीय (मैदान) चौगान जहां महाराजाके सैनिक प्रशिक्षित किये जाते थे, (चौगान अर्वी शब्द है जिसका अर्थ है, शहर के वीचों बीच हरे रंग का मैदान) जिसके चारों कोनों पर वने पक्के कुएं तथा लम्बे फैले वाजारके साथ-साथ एक ओर टयालों (चवूतरों) पर शोभा पार रहे पीपल महा-वृक्ष हैं । मैदान के एक ओर यहां का 1790 में निर्मित राधा-कृष्ण मन्दिर स्थापत्यकला का अद्वितीय नमूना है जिसके ऊंचे सिंह द्वार पर निर्मित नौबत खाना है । कथित नौबत-खाने के दाएं एवं वाएं पर तीन-तीन छज्जेदार, महरावदार द्वार बने हैं जव कि तीन द्वारों वाला नौबतखाना स्वयं इसी पद्धति का सुन्दर निर्मित है जिसके समानान्तर तीन कथित आकार प्रकारके द्वार दूसरी ओर भी मंदिरको ऊपर से झांकते हैं । कथित सिंह द्वार पर नौवत-खाने में प्रातः सायं बजती कर्णप्रिय आकर्षक नौबत भक्ति भावका अनूठा समां बांधती है और प्रातः ही अमृत वेलामें सूर्य अपनी पहली किरण इस सिंह द्वार पर छोड़ता है मानों भगवान् कृष्णको जगाने आती हो वाल किरण । मन्दिर का पक्का विस्तृत प्रांगण चारों दिशाओं से पक्की ऊंची दीवारों से घिरा है । मन्दिर के भीतरी प्रवेश द्वारके ठीक सामने प्रांगण में राधा-कृष्णके सामने भगवान् गरुड़ अपने पंख फैलाए एवं हाथ जोड़े विराजमान हैं । समस्त भारत में मनाया जाने वाला भगवान् कृष्ण का जन्मदिवस अर्थात्

जन्माष्टमी का पावन पर्व कथित मन्दिर में भी परम्परानुसार हर वर्ष मनाया जाता है जिसकी भक्तिभाव से उल्लसित एवं गुंजायमान, अमावस्या होते हुए भी विद्युत प्रकाश से देदीप्यमान उमड़ती छटा देखते ही बनती है।

मन्दिर के मुख्य प्रवेशद्वार से पक्के विस्तृत प्रांगण को लांघ कर मन्दिर में प्रवेश करने के पश्चात् एक बड़े कक्ष में प्रवेश होना पड़ता है जो दाएं एवं बाएं को पीछे हट कर एक हाल का रुप धारण करता है जिसकी छत्त पत्थर के छोटे चपटे शहतीरों या शिलाओं से चोकोर षट्कोणीय पद्धति पर ऊपर तक बनती गई खानों से निर्मित है। ये खाने तीन पंक्तियों में विभाजित हैं और प्रत्येक पंक्ति में कथित तीन-तीन खाने हैं ताकि छत्त की मजबूती बनी रहे। यह विशाल छत्त बड़े-बड़े स्तूपों पर खड़ी है। ये स्तूप संख्या में बाएं हाथ पर तीन, दाएं हाथ पर दो हैं। आमने सामने पड़ने वाले दो-दो स्तम्भ गोल हैं। आगे मूर्तियों के कक्ष में प्रवेश द्वार पर दोनों ओर एक-एक गोल स्तम्भ है और कथित हाल के विशाल प्रवेश द्वार पर दोनों ओर एक-एक गोल स्तम्भ है जहां काष्ट निर्मित बड़े-बड़े किवाड़ आज भी लगे हैं। छत्त पर लटकता घंटा जब बजता है तो उसकी प्रतिध्वनि मन्दिर के शुद्ध शान्त वातावरण को भंग करती हुई बड़ी कर्णप्रिय लगती है। कथित हाल दाएं-बाएं के कक्षों के स्तम्भों पर उभरती कई प्रकार की मूर्तियां कला एवं संस्कृति की झांकियां प्रस्तुत करती हैं जहां दाएं-बाएं पर बनी पत्थर की जालियां वायु एवं प्रकाश के खटकते अभाव को दूर करती हैं। और हाल विश्राम के लिये ऊपर उठा स्थान उपलब्ध करवाता है किन्तु वहां अधिकांश पुजारी का सामान और भगवान की जोड़ी के कीमती वस्त्र एवं साज सज्जा के कीमती सामान ही सुरक्षित रखे जाते हैं। कथित लटकते घंटे के ठीक सामने आगे जा कर एक छोटे कक्ष में प्रवेश करते ही कृष्ण एवं राधिका की आदम कद की भव्य मूर्तियां स्थापित हैं। भगवान कृष्ण चादर ओढ़े बंसी बजा रहे हैं और राधा अपनी पूरी पोशाक में है-जैसी आकर्षक

शैली में विराजमान हैं। मन्दिर की बाहरी दीवारों पर चारों ओर देवी देवताओं की छोटी-छोटी मूर्तियां स्थापित हैं जो मन्दिर की परिक्रमा करते समय स्पष्ट दिखाई देती है।

क़स्बे का दूसरा भव्य मन्दिर व्यास नदी के बाए खुरम्य तट पर स्थित है जिसका निर्माण महाराजा संसार चन्द की माता महारानी प्रसन्ना देवी ने (1802 A.D.) में करवाया। मंदिरके प्रवेश द्वारके बाहर महावीर एवं भैरों की पत्थर की मूर्तियां स्थापित हैं। इस मन्दिर का प्रथानुसार ऊंचा शिखर नहीं है अपितु चपटी छत्त है। मन्दिर शिवजी को समर्पित है समय बीतते इस मन्दिर का नाम, क्षेत्रीय पहाड़ी बोली में, 'नर्मदेश्वर' से 'नरबदेसर', प्रचलित हो गया। इस मन्दिर की सिंहद्वार की छत्त में लटकता बड़ा घंटा देखने योग्य है जो ऊषा काल में ही बहती शान्त-समीर के सुहावने एवं स्वच्छ वातावरण प्रभुभक्त पुजारी द्वारा बजा दिया जाता है जिस की गम्भीर ध्वनि शान्त घाटी में दूर-2 तक सुनी जा सकती है। स्थानीय लोग इसे, 'गजर बज गया', कहते हैं अर्थात् गजरदम या तड़का हो गया। मन्दिर के बाहरी एवं भीतरी प्रवेश द्वार पूर्व की ओर हैं। हिन्दू-संस्कृति में आदिकाल से यह आस्था एवं धार्मिक प्रथा रही है कि घर आदि का प्रवेशद्वार पूर्वमें ही रहे ताकि सूर्य देवताका प्रातः ही अमृत-वेला में शुभागमन दर्शनीय एवं स्मृद्धिकारक हो। महाराजा संसार चन्द ने इस सांस्कृतिक परम्परा एवं मान्य आस्था का निर्वाह न केवल इसी स्थान पर किया है बल्कि अन्य निर्माण क्षेत्रों में भी उनकी इस विचार की स्पष्ट झलक मिलती है। इस मन्दिरके चारों ओर तीन तीन महराबदार द्वार हैं परन्तु पीठ की ओर तीनों द्वार बन्द हैं जिनपर मिटती मिटती चित्रकारी अभी भी देखी जा सकती है। यह मन्दिर लगभग अढ़ाई फुट ऊंचे चोकोर उठे चबूतरे पर स्थित है फिर चारों ओर लगभग आठ फुट चौड़ी गैलरी निर्मित है जिसका आकार मन्दिर के चबूतरे के अनुरुप ही है। चारों ओर से दीवारों से घिरी इस गैलरी के साथ-साथ बाहरकी ओर छज्जे बने हैं या यूं कहिये कि तंग बरामदे हैं जो मंदिर के चारों ओर प्रांगण में खुलते

हैं। गैलरी के चारों कोनोंपर चार कक्ष हैं जिनमें प्रत्येक में दो-दो सिमेंट की जालीदार खिड़कियां प्रकाश एवं हवा की व्यवस्था केलिये हैं। हर कक्षमें दो दो महरावदार द्वार हैं जिनके नीचे से होकर गैलरी में चल कर मंदिर की परिक्रमां की जा सकती है। इन द्वारों पर कृष्ण, महाभारत से संबंधित युद्ध के दृश्य कांगड़ा चित्रकला शैली में चित्रित हैं। मन्दिर की सारी की सारी गैलरी की छत्तमें घने वेल बूटोंके पक्के रंग आज भी अमिट और शोभनीय हैं। मन्दिर के ठीक मध्य में शिवलिंग स्थापित है और उसके चारों ओर लगभग छः फुट व्यास के गोलाकार मंडलकी परीधि पर वन्दनीय शिवपुत्र गणेश और शिव-वाहन बैल आमने-सामने मुंह किए हुए बैठे हैं और अन्य दो मूर्तियां गौरी और एक नवयुवती हाथ जोड़े बैठी मुद्रामें शोभायमान हैं। कथित चारों मूर्तियां सफेद संगेमरमरकी बनी हैं। सभी द्वारों पर सुनेहरे डब्बीदार हाशिए खिचे हैं जिन्होंने सारी घनी चित्रकारी को घेरा हुआ है। गैलरीकी प्रत्येक लम्वी भुजा में तीन तीन महरावदार द्वार हैं जिनमें दो द्वार हर दो कक्षोंमें हैं (जैसे पहले वताया गया है) जिनपर वेल बूटे, पत्ती और महाभारत से संबंधित चित्र अंकित हैं। मुख्यप्रवेशद्वारके दाएं और वाएं पर पुजारी के रहने की व्यवस्था है तथा व्यास नदीकी ओर वाली लम्बी दीवारके मध्यमें एक दरवाजा है जहांसे होकर एक छोटी वावड़ी (छोटा तालाव) तक जाया जा सकता है। मन्दिरकी गैलरीमें अन्य चित्रोंके अतिरिक्त गणेश, साधु, सिद्ध वावा स्वरूप-गिर का मन्दिर, कलश (घड़ेके आकार में), राधा-कृष्णके प्रणय-संबंधोंके चित्र, जंगल, नृत्य, गाने-वजाने और शादीके दृश्य दर्शाए गए हैं। टांवरी (लिपि) में भी कुछ लिखा गया है। वाहर मन्दिरके चारों कोनोंपर प्रांगण में चार छोटे छोटे मन्दिर भी हैं जिनमें क्रमशः (वाएं से दाएं) सूर्य, गणेश, दुर्गा और राधा-कृष्ण की प्रतिमाएं स्थापित हैं। यहां हर छोटे मन्दिर में एक ही महरावदार द्वार है परन्तु सिमिंट की जालियां प्रकाश एवं हवा के लिये पर्याप्त हैं। इस मन्दिरके सिंह द्वार पर चढ़ने के लिये दो स्थानों पर पक्की स्थाई सीढ़ियोंकी भी व्यवस्था है जहां से व्यास नदी,

आलमपुर, भेड़ी, बगेड़ा, लम्बाग्राम, नवनिर्मित मोटर की पक्की सड़क एवं धौलाधारकी हिम मंडित शृंखलाओंके मोहक दृश्य दूर दूर तक देखे जा सकते हैं। बताया जाता है कि इस मन्दिर की चित्रकारी मनक् तथा उसके परिवार ने की थी। **विशाल मैदान के एक ओर हमीरपुर को जाने वाले पक्के मोटर मार्ग पर'** प्रसिद्धि लिये हुए **सिद्ध बाबा स्वरुप गिरका एक** छोटा सा मन्दिर है। जीवित ही समाधि में समाने वाले बाबा पर महाराजाकी अपार श्रद्धा थी। अब हर वर्ष यहां यज्ञ रचानेकी प्रथा है। इसी विस्तृत एवं हरे भरे सपाट मैदान की परिधिपर अब कई सरकारी कार्यालय और नवनिर्मित सैनिक स्कूलका भव्यभवन स्थित हैं। हिमाचल प्रसिद्ध होलीका राज्यस्तरीय मेला भी इसी मैदान में रचाया जाता है जहां की प्रतिदिन शाम को निकलने वाली झांकियों की न्यारी शोभा निहारने योग्य होती है।

टीहरा :

टीहरा, सुजानपुर कस्बे के एक ओर सुरम्य ऊंची पहाड़ीपर बसा है। इसे देखकर ही महाराजा के तेजोमय सूर्यका ज्ञान हो जाता है। वहां पहाड़ी पर लगभग तीन किलोमीटर की दूरी को अब मोटर द्वारा बड़ी सरलता और बहुत कम समय में पहुंचा जा सकता है। टेढ़ी मेढ़ी पहाड़ी पर जाती, वल खाती, इस पक्की सड़क पर बीच बीच में खड़े होकर, नीचे बसे कस्बा सुजानपुर, बहती व्यास नदी की शान्त जलधारा, कस्बा आलमपुर, जयसिंहपुर, लम्बाग्राम तथा सफेद बर्फ से लदीं धौलाधार और आस पासके पहाड़ी प्राकृतिक दृश्य शुद्ध शान्त वायु झकोरों के बीच और भी मनमोहक हो जाते हैं। यदि यहां की प्राकृतिक छटाका आस्वादन करना हो तो पर्यट अथवा प्रकृति-प्रेमी को पैदल ही पग-डंडी पर चलना चाहिए और मार्ग में चलते चलते बीच बीच में खड़े होकर सरसराते वायुझकोरों एवं परमशान्त वातावरण का आनन्द लेना चाहिए। वर्षाॠतु में तो इस मनोरम घाटीका प्राकृतिक सौन्दर्य और भी निखर आता है।

टीहरा के राजभवन के सिंहद्वार में प्रवेश करने के पूर्व, अपने बाईं ओर जाने वाली पगडंडी पर थोड़ी दूरी पर तीन ओर से पानी से घिरा एक छोटा मन्दिर है और उसके पास ही एक चबूतरे पर एक और छोटे से मन्दिर में, 'छुरी-मार-डोगरा,, की पत्थर की मूर्ति स्थापित है। किंवदन्ती है कि जब राजा इस शाहूकार डोगरा ब्राह्मण के व्यस्तता के कारण पैसे लौटाने में असमर्थ रहा, तो उसने आत्म हत्या कर ली। राजा को ब्रह्म-हत्या का दोष लगा और रात को राजा सोये सोये चारपाई से नीचे गिर जाते थे और जब वे भोजन करने बैठते थे तो भोजन में रक्त आ जाता था। दुःखी होकर पहाड़ी राजा को इस सुन्दर पहाड़ी के निवास को त्यागना पड़ा।

कथित सिंहद्वार के पास से आगे यदि अर्द्ध फरलांग तक पग-डंडी पर चलें तो एक विशाल जलाशय दृष्टिगत होता है। महाराजा द्वारा बनवाया गया यह विशाल तालाल टीहरा के समस्त क्षेत्र को पीने योग्य पानी अभी भी उपलब्ध करवाता है। कुछ समय पूर्व एक साधु ने इस के शान्त किनारे वास किया था और सम्पूर्ण तालाब को वर्षों पुराने कीचड़ समेत साफ करवा कर, सैंकड़ों लोगों को इस साफ सुथरे खाली तालाब में बिठाकर भोजन करवाया था एवं विशाल यज्ञ सम्पन्न किया था। अब इस सरोवर के स्वच्छ जल में तैरती मछलियों का सुहावना दृश्य निहारते जी नहीं अघाता।

बारह-दरी :—

राजमहल के सिंह द्वार में प्रवेश करते ही दाएं पर 'बारहदरी', नाम का पक्का भव्य विस्तृत सभा भवन स्थित है। बारह द्वार होने के नाते इसका 'बारह-दरी' नाम सार्थक है। कहते हैं महाराजा संसारचन्द इस सभा भवन में अपने 22 पहाड़ी राजाओं के साथ गौरवमय दरबार लगाया करते थे। परन्तु अब इस पहाड़ी प्रतापी महाराजा के प्रताप को बोलने वाले इस ऐतिहासिक बारह-दरी के शेष ग्यारह द्वार ही बचे हैं। समस्त बारह-दरी गैलरी समेत एक चबूतरे पर स्थित है जो छोटी लाल पक्की ईंटों और चूने तथा रेतले सलेटिया रंग के पत्थर की

चिकनी निर्मित है। इस के दोनों सिरों पर पांच महराबदार द्वार हैं परन्तु बाए सिरे पर का पांचवां द्वार नष्ट प्राय हो गया है। बारह-दरी में महाराजा के चित्रकला प्रेमी होने का कोई चिह्न नहीं स्पष्ट होता। सम्भव है कि वहां सादगी से ही प्रेम किया गया हो। विशाल सभाभवन के चारों ओर लम्बी खुली गैलरी दौड़ती चली गई है जहां प्राकृतिक प्रकाश का अभाव लेशमात्र भी नहीं खटकता है। यहां विशेष उल्लेखनीय बात यह कि सभाभवन और गैलरी के सभी के सभी महराबदार द्वार परस्पर समानान्तर और एक ही नाप एवं आकार प्रकार के चिकने आकर्षक हैं। सभाभवन के सभी ओर के द्वार गैलरी में खुलते हैं और गैलरी के द्वार बाहर खुले में। बारह-दरी के दाए सिरे पर के चार द्वार वज्रलेप से बन्द हैं। ज्ञात नहीं महाराजा ने ऐसा सुरक्षा की दृष्टि से करवाया था या और कुछ समझकर। पीछे की ओर सुजानपुर कस्बे को ऊपर से झांकते हुए नौ महराबदार द्वार हैं जहां से समस्त सुजानपुर, न्यूगलखड्ड, आलमपुर के मोहक दृश्य देखे जा सकते हैं और आगे की ओर भी इसी आकार के नौ द्वार हैं। गैलरी में लगी पक्की टाईल का लगभग $4'' \times 2\frac{1}{2}'' \times 1\frac{1}{2}''$ है। गैलरी के चारों ओर घिरे सभाभवन की छत्त आईताकार और बाद में गोलाई लिए है जो छोटी पक्की लाल (ईंटों) टाईलके दोहरी पर्तके टुकड़ों एवं चूना मिश्रित मसालेसे निर्मित है और ऊपर छत्त के पास दीवारों पर चौड़ाई के आर पार लकड़ी के लम्बे शहतीर अब दिखाई नहीं देते परन्तु दीवारों में उन के लिये बने खांचे आज भी स्पष्ट करते हैं कि ये शहतीर छत्त की सुरक्षा के लिये लगाए गये थे। स्पष्ट है कि सारे का सारा राज महल कथित मसाले का बना है। कहा नही जा सकता उन दिनों कारीगर इतना मजबूत एवं टिकाउ मसाला किन-किन वस्तुओं को मिलाकर तैयार करते थे। यदि बाहर की ओर से (गैलरी में सीधा प्रवेश करने के पूर्व) इन द्वारों को गिना जाए तो ग्यारह द्वार ही शेष मिलते हैं और बाहरवां द्वार ध्वस्त हो चुका है। जैसे पहले कह आया हूं। साथ ही समस्त गैलरी पर अब कोई छत्त शेष

नहीं रही है। सभाभवन की छत पर चढ़ने के लिये दाएं सिरे पर पत्थर की ईंटों की बनी घुमाऊंदार स्थाई पक्की सीढ़ी निर्मित है जिसने लगभग एवं द्वार के बराबर स्थान घेरा है। गैलरी में प्रवेश करने के पूर्व बाहर चबूतरे का शेष भाग है जो बरामन्दे का भी काम देता है और इसके नीचे उतरकर सामने आंगन सिंहद्वार को छूता हुआ विस्तृत फैला हुआ है जहां दाएं पर एक ओर महाराजा के महल बिखरे पड़े हैं जिनकी अटेहरीदार खिड़कियां महलों की सुन्दर निर्माण कला को स्वतः दर्शाती हैं। महलों में कुछ अभी भी काफी अच्छी हालत में है और जिस में 'अंधेर-कोठड़ी', भी शामिल है। अब भग्नावशेषों पर घास फूस का उग आना स्वाभाविक है जहां 'टोर', की मोटी वेलों का जाल सा फैला है जिनकी बढ़ियां पत्तियां बिवाह शादियों में भोजनार्थ थाली एवं डोने बनाने के काम में लाई जाती हैं। यदि इन महलों के आगे ध्यान से देखें तो पता चलेगा कि सारे के सारे राजमहल के चारों ओर पक्की ऊंची कुंगरे दार दीवार सुरक्षा के लिये महाराजा ने बनवाई थी। इसी बाहरःदरी के आंगन के बाएं पर सिंहद्वार के दोनों बाएं एवं दाएं बाजुओं पर दो मंजिला भवन में द्वारपालों के आवास की अवस्था थी जिस में लगी टाईल का आकार 9×6×2 अंगुल रहा और उनके निचले भाग में युद्ध सामग्री (अस्त्र-शस्त्र) आदि रखने के लिये ऐसे कक्ष बने मिलते हैं जहां खिड़की अथवा रोशनदान नाम तक की कोई व्यवस्था नहीं है। कथित सिंहद्वार एवं द्वारपालों के आवास के ऊपर से भी लम्बा ग्राम, जयसिंह पुर, भेढ़ी, आलमपुर, व्यास नदी और धौलाधार के बर्फीले धूप-छाओं लिये हुए बदलते भव्य दृश्य दूर-दूर तक देखे जा सकते हैं। यही दृश्य कथित गैलरी के दाएं सिरे के खुले द्वारों से भी देखे जा सकते हैं। वर्षातु में तो यहां से देखी जाने वाली प्राकृतिक दृश्यों की छटा का कहना ही क्या ! अति रमणीय होती है वह हरियाली। उस पार उठती हुई हरी-भरी पहाड़ियां और उससे भी आगे धौलाधार की नशीली बर्फीली चोटियां एवं शुद्ध शांत सरसराते पवन झकोरे मन को मोह-मोह से लेते

हैं। इस प्रकार के कस्बे के कोलाहल से दूर, प्रदूषण रहित, शान्त वातावरण के स्थान को चुन कर महाराजाने अपने कला प्रेमी होने के साथ-साथ प्रकृति-प्रेमी होने का भी खूब परिचय दिया है।

गौरी-शंकर-मन्दिर

टीहरा स्थित गौरी शंकर का सन् 1804 में निर्मित भव्य मन्दिर देखने योग्य है जहां गौरी और शंकर की आदम कद की मूर्तियां शोभायमान हैं जो स्थापत्य कला के अद्भुत नमूने हैं। मन्दिर की भीतरी दीवारों और छत्त पर गौरीपुत्र गणेश, महिलाओं द्वारा गाने-बजाने एवं वीणा वादन, ढोलक, महिलों में राधा-कृष्ण मिलन, त्रि-मुखी (तीन मुंह वाली) शिवजी की सवारी, मोर, वेल बूटे जैसे कांगड़ा चित्रकला शैली के चित्रों की चित्रकारी की भरमार है। मन्दिर की मूर्तियों के दाईं ओर एक भित्ती चित्र में भगवान कृष्ण हाथ में फूल लिये हैं तथा राधिका सामने बैठी हैं। दूसरे चित्र में दोनों कृष्ण और राधिका पास पास बैठे हैं। इसके निचले चित्र कालगति से धूमिल पड़ गये हैं। स्तम्भ के द्वारों पर भी छोटे छोटे चित्र अंकित हैं। कथित मूर्तियों के पीछे की बन्द दीवार पर भी विभिन्न दृश्य-चित्र अंकित हैं। मूर्तियों के बाईं ओर बड़े चित्र में गमले, बेल बूटे आदि दर्शाए गये हैं। अतः भगवान गौरी शंकर की मूर्तियों के पीछे वाले तीनों द्वार पूरी दीवार से ढके हैं, जैसे पहले कह आया हूं। शेष मन्दिर के तीनों ओर के महराबदार द्वारों पर पक्की दीवार की जगह कपड़े के सफैद परदे लटकते रहते हैं जो आवश्यकतानुसार बन्द व खोले जा सकते हैं। मूर्तियों के सम्मुख पड़ने वाले महराबदार द्वारों के परदे दिन को उठे रहते हैं ताकि लोग, पर्यटक मन्दिर में पूजा पाठ कर सकें। शेष दोनों किनारों के आमने सामने के परदे सदा बन्द ही रहते हैं। मन्दिर की छत्त वर्गाकार है। महराबदार द्वारों के सिरों तथा छत्त के बीच के स्थान पर नारी-रूप के कई चित्र तथा वेल-बूटे चित्रित हैं। एक चित्रमें सुन्दरी हाथ में वीणा लिये है तथा एक अन्य चित्रमें तीरका खाली निशान प्रदर्शित है। मन्दिर के चारों ओर चौड़ा बन्द बरामदा है। केवल बाएं तथा पीछे एक एक

छोटा लकड़ी का दरवाजा हैं। कथित बरामंदे के चारों कोनों पर चार छोटे कक्ष हैं जहां रात को बिना किसी भयके विश्राम किया जा सकता है (लेखक बचपन में अपने सहपाठी मित्र के साथ एक बार वहां गर्मियों में रात काट आया है, जो सन्नाटे भरी रात आज भी याद है)। इस बात से स्पष्ट है कि मन्दिर लगभग दो फुट ऊंचे उठे चबूतरे पर स्थित है। मन्दिर का प्रांगण पक्का तथा पास ही पुजारी का निवास और रसोई घर की सुव्यवस्था है जहां अब पानी का नल भी लगा है। मन्दिर के भीतर और बाहर विद्युत प्रकाश टिमटिमाता है। बाहर से आती बार पक्की सीढ़ियां चढ़कर, डयोढ़ी में प्रवेश करके, मन्दिर के प्रांगण में पहुंचा जा सकता है। मन्दिर के भीतरी मुख्य तीन प्रवेश द्वार जो जाते ही गैलरी में खुलते हैं, की बाईं ओर के पहले द्वार में भगवान शंकर के वाहन एक छोटे बैल की अष्ट-धातु की मूर्ति खड़ी है। कथित तीनों के तीनों द्वार महराबदार और खुले हैं। इस मन्दिर की पीठ की ओर से बड़ा तालाब (ताल), रंगड़, चमयाणा आदि ग्रामों के पहाड़ियों से घिरे सुन्दर दृश्य देखने को मिलते हैं। बाहरःदरी के समक्ष बिछे मैदान को पार कर यदि गौरी-शंकर मन्दिर की ओर बढ़ें तो लम्बी दीवार जो काफी कुछ नष्ट भ्रष्ट हो गई है; में बने द्वार जिसकी छत्त नाम मात्र भी शेष नहीं है, की दाईं ओर से सामने पड़ने वाली दीवार को देखें तो बाहरःदरी के केवल बाईं ओर के तीन द्वार ही दृष्टिगत होते हैं।

राजमहल के मुख्य प्रवेश द्वार की दीवार में ही दाएं और बाएं पर तीन तीन द्वार हैं जहां तहखाने बने हैं जिनकी छतें छोटी टाईलों और बजरी से निर्मित हैं जो बाहरःदरी के पास वाले आंगन में खुलते हैं वहीं से ऊपर जाने के लिये भी पक्की सीढ़ियां बनी हैं जहां से (ऊपर) खड़े हो नीचे सुजानपुर कस्बा, व्यास नदी, आलमपुर, जयसिंहपुर, लम्बागांव, भेड़ी, भलेठ, चम्बोटा ग्रामों, विभिन्न खड्डों नालों और ऊंटों की कतार जैसी मलेटी रंग की फैली धौल धार की बर्फीली चोटियों के मनोरम दृश्य दूर-दूर तक देखे जा सकते हैं। यही कुछ दृश्य बाहरःदरी के पीछे वाले भाग से भी दृष्टिगत होते हैं— जैसे पहले कह आया हूं।

कुल मिला कर यही कहा जा सकता है कि टीहरा में पहाड़ी पर स्थित राजमहल का गौरी-शंकर मन्दिर तथा नीचे सुजानपुर में व्यास नदीके शान्त तटपर स्थित नरमदेश्वर का मन्दिर एक ही शैली के अपने युग के निर्माण कला-कौशल के अनूठे नमूने हैं जो सफेदी लिए मटमैली, चिकने संगे-मरमर के बने हैं और जिनकी चित्रकारी के रंगों का पक्का-पन आज भी अमिट है। न जाने इन अटेहलीदार, छज्जेदार राजमहलों एवं मन्दिरों आदि को निर्मित करवाने में कितना समय और धन व्यल हुआ होगा और कांगड़ा-चित्र-कला-शैली के चित्रों को इधर उधर की भितियों पर चित्रित करवाने में महाराजा ने किस प्रकार के प्रवीण चितेरों को अपने तेजस्वी दरबार में सम्मानित स्थान दिया था।

मन्दिर में आज सज्जा, पूजा अर्चना की सामग्री के अतिरिक्त एक टांग वाला लकड़ी का बना मेज़ भी है जो केन्द्र से सारे मेज़ को थामे हुए है। यह वर्गाकार मेज़ बहुत पुराना प्रतीत होता है जिस की एक भुजा (किनारा) लगभग साढ़े तीन फुट है और ऊंचाई भी लगभग इतनी ही है।

पर्यटक अथवा विचारशील व्यक्ति इस विस्तृत वैभव के प्रतीक महाराजा के राजमहल में घूम फिर कर जब लौटकर बाहर सड़क के किनारे सिंहद्वार पर खड़ा होकर गम्भीर चिन्तन में पड़ जाता है कि इतनी मनोरम प्राकृतिक छटा की गोद में बसा, पहाड़ियों से घिरा, जीवनदाई शुद्ध-वायु-झकोरों से सेवित; आज ये राजमहल सूने पड़े हैं-कि अकाल काल किसी को भी नहीं छोड़ता। यदि छोड़ता है तो उसका स्मृति प्रतीक मिटता मिटता वैभव। उस के मनमें एक कसक उठे बिना नहीं रहती कि अन्त में उस समृद्धिका ऐसा उदासीन अन्त क्यों कर होता है! क्या प्रकृतिको यह गौरव असह्य है? दार्शनिक हृदयका यही सतोषकर चिन्तन है कि कालचक्कर का ऊपरी भाग घूमते घूमते नीचे आता है। यही दशा हमारी इस भूपर बसे मानव जीवन के भाग्य की है, जो प्रकृतिका एक अकाट्य नियम है।

कांगड़ा पर लिखे गये वर्णनात्मक-ग्रन्थ (Kangra Gazetteer) में सुजानपुर टीहरा के विषय में विस्तृत विवरण मिलते हैं। सुजानपुर नगर की 1881 में जन संख्या 3,431 थी जिनमें बहुसंख्यक हिन्दू 2,913; मुसलमान 488, जैन 25 तथा अन्य थे। कथित ग्रन्थ में मकानों की संख्या 706 बताई है। उन दिनों नगर में नगर-पालिका भी हुआ करती थी जिसकी वर्ष 1883-84 में आय 168 पौंड थी। ऊपर पहाड़ी पर स्थित टीहरा में नगर की कचेहरी थी।

भलेठका प्रवेशद्वार :

सुजानपुर नगर का पूर्वमें मुख्य प्रवेश द्वार भलेठ (ग्राम) में स्थित महाराजा संसार चन्दने निर्मित करवाया था जिसे, 'भलेठ का दरवाजा,' भी कहा जाता था। कथित महरावदार द्वार सुजानपुर-हमीरपुर आधुनिक पक्के मोटर मार्ग पर सुजानपुर से लगभग पांच किलो मीटर की दूरीपर स्थित है। महाराजा संसार चन्दने सुरक्षाकी दृष्टि से कथित पक्के निर्मित उन्नत मस्तक खड़े द्वारके बाएं पर महावीर तथा दाएं पर भैरों की आदमकदकी वीर रसका आभास करातीं पत्थर निर्मित देव स्वरूप मूर्तियां स्थापित करवाईं थीं जो कि नगरकी शत्रु से सुरक्षाकी प्रतीक मानीं जाती थीं और शत्रु भी उन से भयभीत रहते थे। कथित प्रवेश द्वार क़िलेका भी काम देता था जिसके दाएं एवं वाएं पर महाराजा के वीर राज-भक्त द्वारपालोंकेलिय एक एक कक्ष निर्मित था जिन्हें आज भी अच्छी अवस्था में देखा जा सकता है। इन कक्षोंमें अब पूर्व (अर्थात् हमीरपुर की ओर) से प्रवेश करने पर वाएं कक्ष में सीता, राम, लक्ष्मण एवं भक्त हनुमान की तथा दाएं कक्ष में दुर्गा मां की सुन्दर मूर्तियां स्थापित हैं जहां विद्युत प्रकाश की समुचित व्यवस्था है। ऊंचे द्वारके मध्यमें एक घंटी भी लटकती रहती है। बाएं हाथपर पड़ने वाले कक्षमें खुदे एक पत्थरमें कटोच वंशज श्रीमती निम्मो देवीने 1989 में सेवा करवाई, अंकित है।

कथित द्वारपर महावीर की आदमकदकी मूर्ति के साथ ही एक संगेमरमर की सफ़ेद पट्टीपर आजकल गठित कमेटीके सदस्योंके नाम दर्शाए

गये हैं। कमेटीने मन्दिर का नाम, 'संकट मोचन द्वार श्री हनुमान, श्री भैरों मन्दिर,' रखा है। इस कमेटीने तो वहांका कायाकल्प ही कर दिया है। द्वारमें प्रवेश करनेके पूर्व नीचे गुंग-खड्डपर निर्मित पुलकी ओर जाती हुई पक्की सीढ़ियां बनाई गई हैं जिनमें उन महानुभावों के नामके पत्थर भी लगे हैं जिन्होंने वहां सेवा करवाई है। पासही एक ओर विपाशा नदीकी शुद्ध-शान्त जल-धारा वहे जा रही है जो पहाड़ियोंसे घिरे हरे भरे वातावरणको और भी मनमोहक वना रही है।

प्रवेशद्वार तक पहुंचनेके पूर्व ही वाएं पर पक्के मोटर मार्ग के साथ ही एक पानी के छोटे तालावके भग्नावशेष पड़े मिलते हैं जो ग्राम तथा राजाके द्वार-पालोंको सुगमतासे पेयजल उपलब्ध करवाता था। इसी तालावके पास ही एक छोटा सा जीर्ण शीर्ण मन्दिर भी है।

आजकल भलेठ ग्रामकी कुल जनसंख्या 1950 तथा समुद्र से ऊंचाई 619 मीटर है। वहां अब कुछ और दुकानें भी खुल गई हैं। वहां के स्थानीय लोगोंका विचार है कि रक्षाके प्रतीक संकटमोचन महावीर तथा भैरों की मान्यता न करने के फल स्वरूप, वहां पक्के पुलके पार पक्के मोटर मार्गपर बहुदुर्घटनाएं वढ़ गईं थीं जो अब काफी घट गई हैं। इसी आस्थासे प्रेरित होकर यहां वैसाखीके अवसरपर हर वर्ष मेला भी लगता है। भलेठके पहाड़ियोंसे घिरे प्राकृतिक दृश्य मन-मोहक हैं अतः सैर स्पाटे और वन भोजार्थ वड़ा उपयुक्त स्थान है।

स्थानीय लोग किसी को अल्पज्ञानका ताहना इसी प्रवेश द्वारके नामसे देते रहे हैं जैसे, "भलेठ के दरवाजे के आगे भी कभी गये हो?" या, "भलेठका दरवाजा तो देखा नहीं, बातें करते हो बड़ी बड़ी!"

अध्याय—2

यदि उत्तर में उच्चपर्वतीय क्षेत्रके राज्य बुशैहर, विलासपुर, मण्डी, कुल्लू (कुलूत), सुकेत (सुन्दर नगर), चम्बा पांचवीं और छटी शताब्दीसे अपने विशिष्ट इतिहास के लिये प्रसिद्ध रहे तो कांगड़ाका हजारों वर्ष पुराना कटोच्च राज-वंश अपने शौर्य एवं उच्च नैतिक मूल्यों के लिये प्रसिद्ध रहा होगा।

व्यास नदी, शतलुज नदी और रावी नदीके विस्तृत क्षेत्रको इतिहास के पन्नोंमें, 'त्रिगर्त' (कांगड़ा) का नाम दिया गया। दूसरी शति ईसा पूर्व में, 'त्रिगर्त', के स्वतन्त्र गणतन्त्र होने के प्रमाण मिलते हैं जिसे उस समयके चोकोर सिक्कों पर, 'त्रकत जनपद', नामसे ब्रह्मी लिपिमें लिखा गया। संस्कृत साहित्य के वैय्याकरण (GRAMMARIAN) पाणिनी जो ईसापूर्व पांचवीं शति में हुए, ने, 'त्रिगर्त' का ऐतिहासिक वर्णन किया। उन्होंने कथित, 'त्रिगर्त', को छः राज्योंका समूह बताया जो, महासंघ कहलाया। इस महासंघ के कांडो पुरथ, कौशतकी, जलमानी, जानकी, दाण्डकी और ब्रह्मगुप्त— ये छः सदस्य थे। किन्तु कई विद्वान 'त्रिगर्त', की व्याख्या तीन गढ़े या तीन सरोवरोंसे करते हैं। इस ऊंची पर्वतमालाओंसे घिरे विशाल क्षेत्र के राजवंशको, 'कटोच्चवंश', कहते हैं जो अपने आदि राजा भूमिचन्द से आरम्भ हुआ। ज्वालामुखीके प्रसिद्ध मन्दिरका निर्माण इसी कटोच्चवंश के राजाने करवाया था। यह राजा महाकाव्य— महाभारत (वृहत्त्रै में से एक) के समय से भी पूर्वका बताया जाता है जिसका प्रामाणिक इतिहास लुप्तप्राय सा ही है। फिर भी पुराण, महाभारत और संस्कृत महाकवि कल्हणकी राजतरंगिणी जैसे महान ग्रन्थों में इस वंशका वर्णन आता है। कटोच्च राजवंश अपने शौर्य, दृढ़ता, बल और महानता के फलस्वरुप इतिहासमें विशिष्ट स्थान लिये हुए है। मुगलकालसे पहले पृथ्वीराज चौहानके (कोट) कांगड़ा पर आक्रमणके समय इस राजवंशने अपनी अपूर्व वीरताका प्रदर्शन किया।

जालन्धर नगर कटोच्च राजाओंकी राजधानी रहा है तो कोट-कांगड़ाका शक्तिशाली दुर्ग अपने आस पास के पर्वतीय क्षेत्रको संगरक्षण प्रदान करता रहा है जो परोक्ष रूपमें कथित क्षेत्रीय व्यवस्था को सुगटित करने में भी सहायक सिद्ध होता रहा। यह सुदृढ़ दुर्ग कटोच्चोंके भाग्यका वारम्वार निर्णायिक रहा है। यह दुर्ग अपनी दुर्ग-निर्माण-कला एवं दृढ़ता का अनूठा नमूना रहा है— जिसके ऐतिहासिक चिह्न आज भी देखे जा सकते हैं। इस दुर्ग की दृढ़ता दसवीं शताब्दी तक सुरक्षित बनी रही।। कोट-कांगड़ा या भीम नगर कहलाने वाला कांगड़ा नगर अपनी भौगोलिक स्थिति के वश अपने नामको सार्थक करता रहा और कांगड़ा दुर्ग (जिसे पुराना किला भी कहते हैं (कटोच्च राजाओंको सुरक्षा प्रदान करता रहा और वे शत्रुके आक्रमणके संकटावसर पर तित्तर-बित्तर होने से वचे रहे। गोरखा सैनानी अमर सिह थापा अपनी गोरखा सेना सहित (पुराना कांगड़ा के निकट) बाण गंगा के तटपर (4) वर्ष तक डेरा डाले रहा, बताया जाता है. परन्तु दुर्गकी एक ईंट भी न उखाड़ सका। बाणगंगा की बहती हुई शीतल जलधारा के उसपार पठानकोट-जोगिन्दर-नगर रेल मार्ग पर चलने वाली छोटी रेलका दृश्य बड़ा मनोहर लगता है कांगड़ा दुर्ग, पुराना कांगड़ा नगर, नये कांगड़ा एवं कांगड़ा मन्दिरका विहंगम दृश्य एक ही दृष्टिमें चलते-चलते करवा देता है जिस का एक पड़ाओ (स्टेशन) कांगड़ा मन्दिर भी पड़ता है और दूसरा कांगड़ा। सन (1009) में जब महमूद गजनवी कांगड़ा पर चढ़ आया तो कांगड़ाके किले और कांगड़ा मन्दिरकी सम्पत्तिको भरपूर लूटा और अतुलित धन को लेता बना। अफगान योद्धाने कांगड़ा क्षेत्र को घेरा, दुर्गको जीता, भारी लूटमार मचाई, इतिहास प्रसिद्ध शक्ति-पीठ मां वज्रेश्वरी (दुर्गा) को तहस महस किया, मूर्तियोंको खंडित किया। वह बहुमूल्य वस्त्र, रत्न, ज्वाहिरात, सोना, चांदी ऊंटोंपर लादकर इस रुचिर संचित धनको ले गया। इतना धनधान्य भरा भंडार था माँ बज्रेश्वरीका एवं इतिहास प्रसिद्ध इस दुर्गका। इस दुर्गा मन्दिर को, 'भौणावाली' भी कहा जाता था। भौणा नये कांगड़ाका ही दूसरा नाम है। जहां माँ बज्रेश्वरी का

भवन (मन्दिर) निर्मित हुआ। कांगड़ा मन्दिर एवं दुर्गकी महिमा इसी बातसे प्रकट होती है कि जिसकी सम्पूर्ण सम्पत्तिको ऊंट नहीं उठा सके, गणक गणना नहीं कर सके थे। ऐसा अपार वैभव था उन दिनों कोट कांगड़ाका। इतिहास अपने आपको दोहराता है। आजकल फिर इस कांगड़ा मन्दिरको पर्यटक, श्रद्धालु दूर-दूर से देखने के लिये आते और अपने श्रद्धा सुमन माँ बज्रेश्वरी के पवित्र चरणोंमें अर्पित करते हैं। ऐसा भक्ति भावका उमड़ता समुद्र नवरात्रोंमें यहां देखनेको मिलता है। महमूद गजनवी ने अपने लूटपाठ परिपूर्ण उन्नीसवें आक्रमणमें कांगड़ा दुर्गको घेर कर अपनी सेनाएं वहां (33) वर्ष तक जमाए रखीं। इस लम्बी अवधि के समाप्त होते ही कांगड़ाके राजाओंने कांगड़ा दुर्गमें जमी अफगान सेनाओंको घेर लिया और चार मासके युद्धके बाद देहली के हिन्दू राजाओंकी सहायता से कांगड़ा दुर्गको मुक्त करा लिया और खोया हुआ राज्य फिर से प्राप्त करा लिया। अब तक सन् (1009-43) का समय व्यतीत हो चुका था और वह लुटेरे महमूद गजनवीके माथे ही लगा।

अब 1043-1343 तक कटोच राज्यका दौर दौरा रहा अर्थात् तीन सौ वर्ष तक कटोच-वंशने सुव्यवस्थित अकंटक राज्य किया और धीरे धीरे और दस राज्य भी स्थापित कर लिए। इस प्रकार उसने अपने आत्मसमान और आत्मगौरवको फिरसे प्राप्त कर लिया फिर मुहम्मद तुग़लकने कटोच वंशके (451 वें) राजा पृथ्वी चन्दसे कांगड़ा प्रदेश जीत लिया। इन तीन सौ वर्षों में क्या कुछ हुआ-यह कटोच वंशके राज्यका अनुसंधानका रुचिकर विषय रहेगा। सन 1343-57 अर्थात् मात्र (14) वर्ष तक ही मुहम्मद तुग़लक के यहां पांव जमे रहे कि कटोच राजाओं ने फिर अपना राज्य वापिस ले लिया किन्तु फ़िरोज तुग़लक ने राजा रुपचन्द (453 वें राजा) को हराकर इस पर्वतीय प्रदेशपर विजय प्राप्त कर ली। 1556 में जब अकबरने सिकन्दरशाह सूरीकापीछा किया तो उसने भागकर कटोच राजा धर्म चन्दकी सहायता से कोट कांगड़ा में शरण ली। इसके कुछ समय बाद, 'जहांगीर,' ने कोटकांगड़ाको जीत लिया और

नवाब अलीखां के नेतृत्व में अपनी सेनाओं को कांगड़ा-दुर्ग सौंप दिया। नवाब अलीखां के स्वर्ग सिधारने के बाद उसके बेटे नवाब हरमत खां ने यहां का राज्य-भार संभाला। शाहजहांके राज्यकाल में नवाब असद उल्लाखां और कच्च कलीखांने शान्तिपूर्वक राज किया। औरंगजेब की अशान्त नीतिका लाभ उठाकर हिन्दु जागृत हो उठे और चन्द्र भान (मान) ने विद्रोह खड़ा किया पर असफल रहा। यदि नवाबोंकीसीमा-सत्ताका सर्वेक्षण किया जाए तो स्पष्ट होगा कि उनका क्षेत्र कांगड़ा दुर्ग और पलमके इलाके तक ही सीमित रहता रहा है।

औरंगजेब की मृत्यु के बाद नवाब आते गये और चलते गये और कांगड़ाका अन्तिम मुगल बादशाह 1743 A.D. में सैफ अलीखां बना और उसके बाद उसके पुत्र जुलफिकार अलीखांने गद्दी सम्भाली। उस समय महाराजा संसारचन्दने अवसर सम्भाला और जयसिंह कन्हैया की सहायता से कांगड़ा दुर्ग को जीत लिया।

कटोच्चों का राजवंश अत्यन्त पुराना रहा है जिसका वर्णन पुराणों में देव-कथाओं में आता है। कभी राज पाठ परम्परानुसार पितासे पुत्र तक किन्हीं कारणोंसे न भी पहुंच पाया हो तो भी वह कटोच वंश घरोंके पास ही रहा है। उन्हें सदा अपनी प्रजा का सहयोग मिलता रहा है। जब भी वे पराजित हुए, उन्होंने बिना रक्तपात के अपना राज्य शत्रुके हवाले कर दिया और समय पाते ही फिर से अपना राज्य प्राप्तकर स्वतन्त्र हो जाया करते थे। सन् 1848 अर्थात् उन्नीसवी शतिके पूर्वाध में जब मूल कटोच राजवंश अपनी शक्ति क्षीण और प्रति निधि विहीन होने लग पड़ा तो राजा की उपाधि चचेरे भाई प्रतापी राजा जयचन्द को प्राप्त हुई जो स्वयं न्यायप्रिय और वीर योद्धा था। अंग्रेज शासक उसे बड़े सम्मान की दृष्टि से देखते थे। राजा जयचन्दके पूर्वज महाराजा संसार चन्दके दादा घमण्ड चन्द एवं पिता तेगचन्द अपने शौर्य के लिये प्रसिद्ध रहे। किन्तु संसार चन्द जैसा लाल पैदाकर वे इतिहासमें कृतकृत्य हो गये। संसार चन्दका राज्याकाशमें चढ़ाचन्द आजतक दीप्त है जिसका वैभव पूर्ण गौरव एवं ललित कला क्षेत्रके पारखी की देन आज भी विश्व में, कांगड़ा-चित्र-कला-शैली अपना विशेष, अमिट ऐतिहासिक स्थान रखती है।

Indian Institute of
11427

अध्याय—3

महाराजा संसारचन्द के जीवन से स्पष्ट होता है कि उन्होंने अपने राज्यकी शासन व्यवस्था में विश्व प्रसिद्ध कौटिल्य (विष्णु गुप्त) के अर्थशास्त्र को ही अपनाया। इतिहास प्रसिद्ध सुजानपुर राजधानी को ही लीजिए। एक ओर व्यापारी महाजन, फिर विद्वान् ब्राह्मण, फिर कृषक-राजपूत, फिर अनुसूचित जाति एवं जन जातिके लोग बसे थे जो आज भी देखे जा सकते हैं चाहे उनमें समयके साथ सामाजिक परिवर्तन आ रहे हों। महाजनों अर्थात् व्यापारी वर्ग की भाषा पहाड़ी रही जो, 'टांकरी,' लिपि में लिखी जाती रही है (टांकरी शार्दा लिपिका संशोधित रूप है)। पंजाब में होशियार पुर के व्यापारी, लेन देन करते समय टांकरी से मिलती जुलती लिपिका प्रयोग करते थे जिसे, 'लंडे', कहते थे किन्तु, 'लंडे' को समझना कठिन था। अतः इस पर्वतीय क्षेत्र में टांकरी ही व्यापारी वर्ग में लोक प्रिय होगई जिस का प्रयोग विस्तृत रूपमें आज भी पुराने वर्तनों पर लिखा दिखाई देता है। उस समय यहां विद्वान् ब्राह्मणों, राजाओं आदि में संस्कृत भाषा का अधिक प्रचार रहा। अतः फल स्वरुप ज्योतिष, फलित ज्योतिष, आयुर्वेद और धार्मिक कर्मकांड पर इस केत्र का विशेष अधिकार रहा। आज भी जिला कांगड़ा (एवं जिला हमीपुर) के क्षेत्रों में लड़के-लड़की की शादी जन्मपत्री मिला कर तय की जाने की प्रथा प्रचलित है और धार्मिक अनुष्ठानों, संस्कारों एवं कर्मकांडों में संस्कृत विधि अपनाई जाती है चाहे आजकल कलियुग में जन साधारण का ऐसी बातों से विमुख होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। फिर भी हिमाचल अपने आपको नहीं भूलता।

राजा मन्त्री की सहयता से राज्यके काम काज चलाता था जिसका राजा से दूसरा स्थान हुआ करता था। विभिन्न भाग चलाने के लिये कई मन्त्री हो सकते थे जिनमें एक प्रधान मन्त्री भी हुआ करता था जो राजा का परमविश्वासपात्र होता था नहीं तो उसे बदल दिया जाता था। स्थाई

मन्त्री तो दोनों, राजा एवं राज्य का हितैषी ही बन पाता था जो कि राज्य की शासन व्यवस्थाका प्रमुख एवं सुस्पष्ट सिद्धान्त ही है। मन्त्री का परामर्श राजाकी इच्छा में बाधक नहीं हुआ करता था यही महाराजा संसारचन्द का अपना स्वतन्त्रताका और विचार शक्तिका गुण था। बताया जाता है कि महाराजा संसार चन्द के दो सुयोग्य मन्त्री रहे, एक लाल चन्द और दूसरा मियां कुन्नू जिनकी चर्चा न होने के बराबर ही रही है। दीवान का कार्यालय राज्यका केन्द्रीयकार्यालय होता था जिसका काम करसंग्रह, विवरण-संग्रह और धनके आय-व्यय का लेखा रखना होता था। एक प्रकारकायह केन्द्रीय-वित्त-मन्त्रालय (दीवानगी) ही था जहां से प्रत्येक विभाग को धन वित्तरत किया जाता था और राजकीय अध्यादेशों पर इसके हस्ताक्षर प्रमाणिकता के लिये आवश्यक थे। कायस्थ-परिवार महाराजा संसारचन्द की दीवानगीके उच्चपदको सुशोभित करता रहा है। जिला कांगड़ा (एवं जिला हमीरपुर) में आज भी कई कायस्थ परिवार हैं जिन्हें, 'दीवान', के नाम से भी पुकारा जाता है। 'दीवानगी', कायस्थ परिवार की विरासत के रूपमें रही है। कोटला (जिला कांगड़ा में) के कायस्थ परिवार के सदस्योंके हाथ महाराजा ससारचन्द का कथित विभाग (कार्यालय) रहा है। दीवान सर्वदयाल इसी परिवारका रहा है।

प्रत्येक प्रान्तमें कोतवाल या मुक़द्दम होता था जो जिलाका न्यायधीश भी कहलाता था। इनके दूसरे स्थान पर, 'कानूनगो', (अर्थात् कानून का ज्ञाता) होता था जो भूमि-कर (Land Revenue) तथा आयकर (Income Tax) इकत्र करके हिसाब दीवान को देता था। नम्बरदार और चौकीदार, कोतवाल और कानूनगोकी सहायता किया करते थे जिनकी नियुक्ति जन संख्या या ग्रामों के क्षेत्र पर अधारित थी। मन्त्री जैसे उच्चपदाधिकारी और चौकीदार जैसे सबसे निचले पदाधिकारी को नियमित रूपसे वेतन दिया जाता था।

महाराजा संसारचन्दका कटोच राज्य सतलुज और रावी नदियोंके मध्यका सारा प्रदेश था। कांगड़ा, पालमपुर, हमीरपुर की तहसीलें और

कुल्लू (कुलूत) प्रदेशका कुछ भाग मध्य भाग में थे जहां वे स्वयं राज करते थे। शेष प्रदेश राजपूत राजाओं के पास था जिनकी, 'दशहरा पर्व', पर लगने वाले महाराजा के दरबार में उपस्थिति अनिवार्य थी। वे महाराजा को कर के अतिरिक्त सैनिक सहायता भी देते थे महाराजा का निजी राज्य, कटोच, पलम और चंगर, तीन भागों में बटा था (कांगड़ा, नगरोटा बगवां एवं पालमपुर के आस पास के क्षेत्र आज भी, 'पलम', कहलाते हैं और वहांके निवासियों को अब भी लोग, 'पालम्', कहते हैं अर्थात् पलम (क्षेत्र) का रहने वाला। पलमका गुड़ प्रसिद्ध रहा है। इस क्षेत्रकी गुड़की दो सेर (एक बट्टी) वजनकी लगभग गोल फुटवाल के आकार की, 'भेली', दूर दूर तक प्रसिद्ध थी जो, 'कांगड़िया गुड़', के नामसे जानी जाती थी। यह अपनी मिठास, स्वाद के आंतरिक्त शुद्धता के लिये भी प्रसिद्ध थी। इस ओर यात्रापर आए लोग अपने घरोंको लौटते समय यहांके गुड़की भेली सौगात के तौर पर लेजाया करते थे। किन्तु आजके परिवर्तित समय में कथित भेलीके अब दिन लद चुके हैं। हां, इस क्षेत्रमें चायके बगीचे आजकल काफी विकसित हैं। यहांकी प्रसिद्ध, 'देशी चाय', विदेशोंमें भी बहुत लोक प्रिय है जिसका निर्यात अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाता है। (5 जून 1992 को पालमपुर में 'कांगड़ा चाय उत्सव' का आयोजन किया गया जिसका उद्घाटन राष्ट्रपति श्री बैंकटरमण ने किया)।

इस क्षेत्रकी भूमि बढ़िया-धान की उपज के लिये उत्तम मानी गई है क्योंकि वहां कुहलों (छोटी नहरों)द्वार भूमिकी सिंचाई होती है। 'राम-जुआएं, परमल और बासमती,' धान की बढ़िया उपज केलिये यह क्षेत्र प्रसिद्ध एवं समृद्ध रहा है और आज भी है। जिन इलाकों में खेती वर्षा पर ही निर्भर थी वे, 'चंगर', कहलाए। ऐसे चंगरों में बंजर भूमिका अधिक होना स्वाभिक ही थी परम्परानुसार भूमिका स्वामी राजा माना जाता था। कृषि हित राजा भूमिको कृषकों के पास देता था भूमिपर लगान भूमिकी किसम के अनुसार लगाया जाता था। बढ़िया भूमिपर 1/2 और घटिया पर 1/3, 1/4 और 2/5 भाग, कर के रूप में प्राप्त किया

जाता था। निर्धारित-कर वर्षों तक वही बना रहता था परन्तु विशेष कारणों वश उसे कम या अधिक भी किया जा सकता था ताकि जनताके साथ न्याय भी होता रहे और राज्य की आय भी संतुलित बनी रहे। मछली पकड़ना, मधुमखी पालना और बागों को राजकीय सम्पत्ति माना जाता था। इन पर (Royalty) राजस्व देना पड़ता था। शराब खानों एवं जुआ घरों के लिए विशेष स्वीकृति लेनी होती थी ताकि ये बुराईयां समाजमें सीमा न लांघ जाएं इन से प्राप्त आय को, बज्रेश्वरी-कर', कहा जाता था। फलों के वगीचे भी प्रतिवर्ष नीलाम किए जाते थे। जिस 'सैरी के पर्व' को जिला कांगड़ा, जिला हमीरपुर के दूर दूर के प्रदेश आज भी बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाते हैं वह पर्व महाराजा संसारचन्द के समय में भी बड़ी धूमधाम से मनाया जाता था। आश्विन (पहाड़ी में सूज) मास की हरीतिमा और सर्दी के धीमे बढ़ते कदमों के बीच मनाया जाने वाला सैरीका पर्व, लोगों में बड़े उल्लास एवं स्फूर्तिका विषय रहता था। इस सद्भावपूर्ण अवसर पर महाराजा को फल, सब्जी, तरकारी की टोकरियां और अच्छे अच्छे सुन्दर चित्रों के अतिरिक्त व्यापारी लोग नाना प्रकार की वस्तुएं भेंट स्वरुप देते थे जिन्हें उदार हृदय महाराजा अपने प्रति प्रजाका, 'असीम प्रेम', सूचक मानते थे।

महाराजा को इतिहासमें बड़ा धनी राजा कहा गया है जिसका निजि पारिवारिक व्यय सत्तर हजार तक रहा। एक अंग्रेज पर्यटक, 'मूरक्राफ्ट', ने अपने यात्रा विवरणों में लिखा है कि महाराजा के कोष में अनेकों बहुमूल्य वस्तुओं के भण्डार थे जिनमें हीरे, ज्वाहरात भी शामिल थे। इनके इतने विस्तृत राज्य की आए उसने पैंतालीस लाख रुपये बताई है।

महाराजा संसारचन्द स्वयं एक चतुर एवं साहसी सैनिक थे। वे कई बार युद्धक्षेत्रमें गये। ज्यों ही उनके राज्य का विस्तार हुआ उन्होंने विरास्त में मिली चार हजार राजपूत एवं रोहिला सैनिकों को प्रशिक्षण दिया और उनका वेतन भी बढ़ाया। यहां महाराजा की दूरदर्शिता एवं

मनोविज्ञान का जादू परिलक्षित होता है क्योंकि वेतन के रुप में आर्थिक उन्नति सैनिक के हृदय में अपने राजा के प्रति अपनत्व और वफादारी स्वाभाविक रुपमें जगाता है। न केवल यही वल्कि उनकी सेनाके अनेक भाग थे ताकि सैनिक व्यवस्था मज़बूत बनी रहे और राज्य सुरक्षित रहे। सेना के प्रधान सैनिक को, 'फौजदार कहते थे। प्रत्येक विभाग दस छोटे भागों में और आगे बटा हुआ था जिसका अधिकारी, 'हवालदार', कहलाता था। (महाराजा की राजधानी सुजानपुर (टीहरा) कस्वे का विस्तृत, समतल, हरा भरा एकड़ों में फैला मैदान, 'पैरेड-मैदान', कहलाता था जहां महारारा के सैनिक नित्यप्रति अभ्यास करते थे। कथित मैदान, आज भी कस्वे की शोभा है, किन्तु इसका क्षेत्र अब छोटा होता जा रहा है जिसे इतिहास एवं सौन्दर्य की दृष्टि से प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता। इसके विपरीत कस्बे के जन-स्वास्थ्य और बहुमूल्य सांस्कृतिक विचार धारा पर निकट भविष्य में प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है)। महाराजा के शासन में सैनिक तलवार, तीर-कमान और भाले के अतिरिक्त वन्दूक का भी प्रयोग रण भूमिमें करते थे।

महाराजा के राज्यमें दण्ड तथा व्यवस्था जैसे अभियोग कोतवाल द्वारा सुने जाते थे। जैसे कि पहले बताया जा चुका है कि कोतवाल न्याय-धीश भी होता था। अभियुक्त अपनी अपील राजा या मन्त्री के पास कर सकता था। राजा का निर्णय अपने में अन्तिम माना जाता था। राजा मनमानी नहीं कर सकता था। वह भी मर्यादा में बंधा था क्योंकि उसपर भी नियम एवं सामाजिक रीति-रिवाजोंका अंकुश लागू था जिनकी सीमाके भीतर रहकर ही न्याय प्रदान करना होता था। अतः इस प्रकारका न्यायप्रिय राजा जिस प्रजाको मिला हो वह क्यों न भरपूर सुख और शान्तिका भोग करे? बताया जाता है कि लोग उन दिनों अपने घरोंमें ताले कम ही लगाया करते थे। (वात 1952 की है जब लेखक डी.ऐ.वी. कॉलेज जालन्धर में पढ़ा करता था तो एक दिन अर्थशास्त्र विषय के घंटेमें परिचर्चाके दौरान एक विद्यार्थी ने कुछ ऐसा प्रश्न किया जिसका संबंध

सुव्यवस्था एवं विकास से था। विद्वान ग्राचार्य श्री डी० डी० नरूला ने बताया कि अमुक समय में तो लोग बड़े भलेमानुष हुआ करते थे। फिर उन्होंने पूछा, इस कक्षामें कोई हिमाचल प्रदेशका है? मैं खड़ा हो गया ग्रौर मुझ से पूछा कि क्या वहां कांगड़ा में लोग घरों में ताला लगाते हैं ? मेरा उत्तर था, 'नहीं जी'।) लोग राज दरबार में जाने से घबराते थे। अभियोग को समाज में बड़ा घृणित दोष माना जाता था। इसी कारण उन दिनों मुदद्मे भी बिरले ही हुआ करते थे। छोटे-मोटे सामाजिक अपराधोंका फैसला पंचायतके मान्य पंचों द्वारा निष्पक्ष रुपमें किया जाता था जिसमें अर्थ दण्ड (ज्ञात नहीं किस सीमा तक ?) ग्रौर, हुक्का पानी बन्द, सामाजिक बहिष्कार जैसे दण्ड दिए जाते थे। परन्तु गम्भीर अपराधियों को मार, सम्पत्ति विहीन, अर्थ-दण्ड, ग्रंगछेदन, यहां तक कि फांसी दिए जाने की भी व्यवस्था थी और कभी-कभी 'देश निकाला', भी कर दिया जाता था। धर्मतत्त्व को अपराध की एक मात्र कसोटी माना जाता था। महाराजा के राज्य में अधिकांश जन संख्या हिन्दुओंकी थी ग्रौर कुछ मुसलमान भी थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ग्रौर शूद्र की कई उपजातियां थीं। विभिन्न व्यवसाय अपनानेके फलस्वरुप उनकी कई ग्रौर श्रेणियां भी पनपीं थीं ग्रर्थात् जातिवाद का बोल बाला था। अतः शादी अपनी ही जाति में की जाती थी जिसमें ग्रपने खूनका ग्रभाव सर्वथा ग्रनिवार्य था एवं गोत्र (ऋषि कुल) भी दोनों पक्षों का एक नहीं होना चाहिए। लड़कीके जहेज में घर-गृहस्थीका उपयोगी सामान ही ग्रपनी सामर्थ्यानुसार ही दिया जाता था। वर-वधु की इच्छानुसार विवाह संबंध-पक्का किया जाता था जिसमें माता-पिता की अनुमति की भी मान्यता था। शादी वैदिक रीति रिवाज के अनुरुप रचाई जाती थी। उच्चवर्ग के लोगोंमें बहुविवाह की प्रथा थी परन्तु विधवा विवाह वर्जित था जो आज तक प्रचलित है। उच्चवर्ग की बारात का दूल्हा पालकी (सुखपाल) में सजाता था और वापसी पर दुहलन को लाल सुन्दर सजी-धजी डोली में सम्मान पूर्वक लाया

जाता था। शादी में ढोल, नगारे तुर्ही, नरसिंगे, घैंतरु, वीणा, देसी शहनाई (पीपणीं) अपनी सामार्थयानुसार शामिल किए जाते थे। छोटी जातियों में पुनर्विवाहका चलन था और प्राय: दूहला पैदल बारातमें चलता था। परन्तु युग परिवर्तन के साथ-साथ पर्यटक मूरक्राफ्ट ने अपनी यात्रा पुस्तक में लिखा है कि महाराजा संसारचन्दके समय में स्त्रीयां सती होती थीं जो अमानवीय एवं अनुचित प्रथा मानी जाती थी अंग्रेजों के राज्यके पूर्व भी, 'सती प्रथा', रही है। ऊपरके विवरणसे ऐसा प्रतीत होता है कि, 'सती प्रथ', उस समय उच्चवर्ग के लोगों में ही थी क्योंकि छोटी जाति वालों में पुनर्विवाह का रिवाज था। (भारतीय समाजमें इस सती प्रथा के फैले प्रदूषण रुप कलंक का राजा राम मोहन रायने उनमूलन किया था जिनकी स्मृतिमें महानगर कलकत्ता में उनके नाम से (Library Foundation) पुस्तकालय संस्थान आज भी चलता है जो देश भर में प्रसिद्ध है)।

पिताकी मृत्यु के वाद उसकी सम्पत्ति उसके पुत्रोंमें बरावर बट जाती थी। निस्सन्तान व्यक्ति दूसरेके बालक को गोद भी ले सकता था। भूमि के बटवारेमें राजाज्ञा का होना अनिवार्य था क्योंकि भूमि राजाकी मानी जाती थी।

राज्यके पर्वतीय क्षेत्र और मैदानी क्षेत्र के बीच परस्पर व्यापार पठानकोट और होशियापुरके माद्यम से हुआ करता था। पर्वतीय क्षेत्र में बनने वाले शाल और दोशाले बड़े प्रसिद्ध थे। नूरपुर के दोशाले तो बंगाल एवं उत्तर भारत में बड़े लोक प्रिय थे। जम्मू-कश्मीर और जिला कांगड़ा स्थित नादौंन (कस्वे) के बीच ऊन और शालों का व्यापार हुआ करता था। यातायात के मार्ग इतने अच्छे न थे। अत: माल ऊंटों, घोड़ों, गधों और खच्चरों पर ढोया जाता था। सस्ते का युग था। खाद्यपदार्थों के भाओं सस्ते थे। थोड़ेमें गुजारा हो जाता था। उस समय तोलके बट्ट अपने ही ढंग के हुआ करते थे जिन्हें 'कच्चे-बट्टे', कहा जाता था। एक बट्टी=दो सेर, दो बट्टी =एक घड़ी, एक धड़ी=चार सेर, चार घड़ी=एक मन

(सोलह सेर)। इसी प्रकार अढ़ाई मन कच्चा एक मन पक्का के बराबर हुआ करता था। किन्तु राज्यके 'पलम' जैसे धान उपजाऊ क्षेत्र में अनाज लोहे या लकड़ीके गोल बने डिब्बे से नापा जाता था जिसे, 'भाऊ' और 'ठींवी' कहा जाता था। एक ठींबी में तीन सेर चावल आते थे और एक भाऊ में $\frac{3}{4}$ सेर एवं पथ में आधी ठींबी के नाप थे। इसी प्रकार लम्बाईके नाप भी उस समय अपने ही ढंग के थे। गज दो प्रकार के हुआ करते थे। छोटा गज और बड़ा गज। छोटे गज को, 'कच्चा गज' और बड़े गज को, 'पक्का गज' कहा जाता था। छोटा गज बड़े गज का तीन चौथाई या भाग होता था। बड़े गजमें सोलह (16) गिरह होतीं थीं। (कपड़े की) चौड़ाई को, 'अर्ज', या 'वर', पुकारा जाता था। किसी स्थान की दूरीको, 'कोस', (या कोह) में बताया जाता था। उन दिनों अधिकांश वस्तुओंकी अदला बदली का ही चलन था। सरसोंका तेल खालों में भर-कर खच्चरों पर ढोया जाता था जो बाजारमें गोल पीतलके छोटे घड़े जैसे वर्तनके नाप से भर भरकर बेचा जाता था, जिसे, 'बारा', कहते थे। एक बारे में छः सेर पक्का तेल आता था। भूमि मरलों, बीघों, कनाल और घुमाओं में नपी जाती थी जिनका प्रयोग आज तक होता चला आ रहा है। और मण्डी-कुल्लू क्षेत्र में भूमि आज भी, 'बीसे', आदि में मापी जाती है। (आधुनिक युग में सैंटीयर और हैक्टेयर का रिवाज चल पड़ा है।) यहां कटोच्च वंशजों की मुद्राओंका उल्लेख विशेष महत्त्वपूर्ण है। उनकी मुद्राएं सोना, चान्दी और ताम्बे की रही हैं जो उस समयके इतिहास को प्रमाणित करने में आज भी सशक्त हैं और अमिट प्रमाण हैं। आगे चल-कर अंग्रेजों ने भी अपने कालमें, ठीक इन्हीं बहुमूल्य धातुओंका मुद्रा-निर्माण में प्रयोग किया। इतनी टक्करकी सूझ-बूझ थी इन कटोच्च-वंशजोंकी। किन्तु प्रामाणिकता से कह पाना कठिन है कि महाराजा संसारचन्द ने अपनी किसी मुद्राका चलन किया था।

महाराजा संसारचन्द एक राजा के नाते हर दृष्टि से सुयोग्य एवं सम्पन्न राजा थे। उनमें कई ऐसे गुण थे जो उनके चरित्र को द्विगुणा

करते हैं। वे आस्तिक दुर्गा मां के परमभक्त थे। उनका प्रातः कालीन अमृत वेला पूजा पाठ में ही व्यतीत होता था। वे एक कुशल प्रशासक एवं रण नीतिमें परम निपुण थे, तभी तो कांगड़ा-दुर्ग दृढ़ घेरे में होते हुए भी वह सुजानपुर (टीहरा) में बैठे बैठे ही वहां से खाद्य और युद्ध सामग्री भेजते रहे थे। वे बड़े उदार राजा थे। किसी राज्य को जीतकर भी उन्होंने उसे नष्ट भ्रष्ट नहीं किया बल्कि वहां भी उन्होंने सह-अस्तित्वके सिद्धान्त को ही अपनाया। वे एक सुदृढ़ हिन्दू-राजपूत राज्य की स्थापना करना चाहते थे। वे सहजता से दूसरे पर विश्वास कर लेते थे और इसी दुर्वलता के कारण उन्हें भारी कीमत भी चुकानी पड़ी जब कि रणजीत सिंह द्वारा वे छले गये और हाथमें आया कांगड़ा दुर्ग उस ने हथिया लिया। यदि प्रसिद्ध सुदृढ़ कांगड़ा दुर्ग महाराजा संसारचन्दके पास ही बना रहता तो वे महाराजा रणजीत सिंह की अपेक्षा कहीं अधिक गौरवशाली एवं वैभवशाली महाराजा होते और कांगड़ाका इतिहास किसी और ही दिशामें प्रवाहित होता। फिर भी उनका बीस वर्षोंका राज्यकाल स्वर्ण और शान्तिका युग कहलाया। इसी स्वर्ण युगमें स्थापत्यकला, मूर्तिकल एवं चित्रकला ने भरपूर विकास पाया जिसके कला कारोंको राजाने यथा सम्भव संगरक्षण एवं प्रोत्साहन दिया। यहां तक कि चित्रकला इस सीमा तक विकसित हुई कि वह एकअलग एवं अनूठी शैली के रूप में सूत्रित हुई जो आज भी, 'कांगड़ा-चित्र-कला-शैली', के नाम से समस्त विश्व में प्रसिद्ध है। महाराजाके बीस वर्ष के लम्बे राज्य-काल में प्रजा का जीवन सुख-शान्ति से बीतता रहा। वह युग, 'स्वर्ण-युग', कहलाया। होली, दशहरा, तथा सैरीका पर्व लोग बड़े हर्षोल्लास से मनाया करते थे जिनकी परम्परा आजतक बनी हुई है। महाराजा संसारचन्द व्यास नदीके पूर्वतट पर वसे कस्बा आलमपुरमें अपना 'होली दरवार', लगाया करते थे। महाराजा संसारचन्द की ऐतिहासिक राजधानी सुजानपुर (टीहरा) में हिमाचल प्रसिद्ध होलीका पावन मेला आज भी रचाया जाता है। इस मेलेके सांस्कृतिक महत्व, ऐतिहासिकता और लोकप्रियता को देखकर अब

हिमाचल सरकार कथित मेले को राज्यस्तर पर मनाती है। यह मेला सुजानपुर (टीहरा) के विस्तृत समतल एवं हरे भरे घासकी दरी बिछे, सुरम्य पहाड़ियों और धौलाधार की सलेटी-वर्फीली शृंखलाओंसे घिरे मैदान में लगता है जहां दूर दूर से व्यापारी और लोग आकर, इस मेले की शोभा बढ़ाते हैं। शामको प्रतिदिन देवताओं की सुन्दर, भव्य झांकियां देखने योग्य होती हैं और रातको सांस्कृति कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। कथित मैदान जिला कांगड़ा (अब हमीरपुर) में केवल मात्र मैदान है जो महाराजाकी समृद्ध राजधानीका ऐतिहासिक सूचक है। इसके राज्य में, नगरोंमें कई कलाकार तथा विद्वान थे। महाराजाने कई मार्ग, कुऐं, तालाब, सराए और भव्य मन्दिरों का निर्माण कराया। सुजानपुर कस्बेसे बाहर निकलते ही टीहरा को जाते हुए नवनिर्मित पक्के मोटर मार्गके दाएं पर, 'ठठियार बाजार', हुआ करता था जहां प्रसिद्ध कलाकारी के नमूने, लोटे, गड़वियां, चरोटू, चरोटियां (वलटोहियां), (कांसे-पीतल के) थाल, थालियां जैसे पीतल एवं कांस्ये वर्तन स्व. स./श्री डूरा राम, भूरुराम, पारी चन्द, नैण सिंह, भूरी सिंह, राम सिंह, शिव सिंह, और गंगा सिंह जैसे सिद्धहस्त कारीगर बनाया करते थे। इन मजबूत, पाएदार एवं टिकाऊ और मनपसंद वर्तनोंको महाराजा की राजधानी सुजानपुर के नामसे जोड़ा गया था यथा 'सुजानपुरी-चरोटी' या 'सुजानपुरी-गड़बी' इतने ख्यातिप्राप्त थे उस समय यहां के कुशल-कारीगर। लोग दूर दूर से यहां के बने इन कांसे-पीतल के बर्तनों को अपनी बेटियों के दहेज (दाज) में देने के लिये ले जाते थे। इस प्रकारकी उपयोगिता थी घर में प्रयोग होने वाले इन बर्तनों की। आज भी कई घरों में एवं मन्दिरों में उस समय की कारीगरी के नमूने स्वरुप कथित कई प्रकार के छोटे बड़े बर्तन अनायास ही मिल जाएंगे। परन्तु वे कारीगर आगेचल कर परिवर्तित समयकी धारा प्रवाह में आर्थिक संकटका सामना करते-2 कालकवलित हो गये और उन्हीं के साथ बर्तन बनाने के अनूठे कौशल के साथ साथ वह, 'ठठियार-बाजार', भी बन्द होकर समाप्त हो गया क्योंकि परिवर्तित

समय में उनकी सन्तान ने यह पैतृक व्यवसाय आगे चलकर नहीं अपनाया क्योंकि उस समय आगे चलकर इन कारीगरों को कोई संगरक्षण प्रदान नहीं किया गया और आधुनिक प्रतियोगी बाजारमें इस प्रकारके कारीगर पिसते आए हैं, पिसकर रह गये ।

महाराजा संसारचन्द वचनके पक्के, उदार हृदय, दानशील, न्यायप्रिय, कलाप्रेमी एक बीरयोद्धा और स्वाभिमान जैसे उच्च चरित्रिक गुण सम्पन्न थे । परन्तु उनके प्रचार, प्रसार एवं गुप्तचर विभाग इतने सशक्त न थे । वे निश्छल एवं सरल हृदय रणजीत सिंह जैसे शत्रुपर भी विश्वास कर बैठे और धोखा खाया । यही उनकी खटकती दुर्बलता रही क्योंकि राजाको साम, दाम, दण्ड, भेद युक्त नीतिका समय समय पर भी स्तर्क होकर प्रयोग करना चाहिए । इतना होते हुए भी महाराजाके राज्यकाल में कटोच राज्यने बहुत उन्नति की । व्यापारियों का व्यापार चमका, ब्राह्मण चोटीके विद्वान् माने जाते थे । (इस पर्वतीय क्षेत्र में आज भी बिवाह-शादियां वर-वधु की जन्म-पत्री (जन्म-कुण्डली) मिला कर सम्पन्न की जानेकी परम्परा है) । यह उसी समय का प्रभावित रीति रिवाज आज भी देखने में आता है । महाराजा के दरवार में विद्वानों एवं चित्रकारों का तांता लगा रहता था । उन की प्रजा भलीमानुष, सत्यवादी, आस्तिक और आडम्वरविहीन थी और इस प्रकार सम्पूर्ण राज्य सुव्यवस्थित था । उनके टीहरा (पहाड़ी पर) स्थित राजमहल परिसर में और नीचे कस्वा सुजानपुर के विभिन्न भव्य मन्दिरों में बने कांगड़ा-चित्र-कला शैली के चित्र उस समय के इतिहास पर प्रकाश डालते हैं । आशा है निकट भविष्य में महाराजा संसारचन्द की यह कार्यस्थली, 'सुजानपुर टीहरा', पर्यटकोंके आकर्षणका केन्द्र बनेगी ।

अध्याय—4

कांगड़ा-चित्र-कला शैली :

कांगड़ा-चित्र-कला-शैली का चर्म विकास महाराजा संसार चन्दके लम्बे बीस वर्ष के स्वर्णिम शासन कालमें ही हुआ। वास्तवमें इस पहाड़ी शैली में तीन प्रमुख शैलियां हैं। जम्मूके निकट वाले क्षेत्रमें विकसित प्रथम बसौली शैली, दूसरी कांगड़ा शैली और तीसरी गढ़वाल शैली। कांगड़ा-स्कूल-ऑफ-पैंटिंग (Kangra-School of Painting) या कांगड़ा-चित्र-कला-शैली, सर्वप्रथम सुजानपुर टीहरा, गुलेर और नूरपुरमें विकसित हुई ततपश्चात् मंडी, सुकेत, कुल्लू (कुलूत) और चम्बा में फैली। अतः यह शैली पहले कम पहाड़ी क्षेत्रों से होती हुई अधिक ऊंचाई लिये पहाड़ी क्षेत्रों की ओर निकल गई। इस गौरवमयी शैली में कलाकी निपुणताका कहीं भी अभाव नहीं खटकता है। अधिकांश चित्र राज-दरबार, शिकार, कृष्ण-राधाका प्रेम, पुराणों तथा महाभारतकी गाथाओं से संबंधित हैं। रेखाओं की कोमलता, रंगोंकी चमक-दमक, कलमकी बारीकी, अलौकिक सौन्दर्य घाटियोंकी चित्ताकर्षक-प्राकृतिक पृष्ठ-भूमि, ताजगी, सिडौलता, सहज सुन्दर सन्तुलन, कांगड़ा चित्र कला शैलीकी', विशेषताएं हैं। यहां तक कि नारी-सौन्दर्य को भी चित्रित करने में इस कलाने कमाल किया है मृग नयनीके मृग जैसे नेत्र, लम्बी नाक, गोलाकार ठोडी, उभरे-कठोर-स्तन, भौएं लम्बी और पतली, आंखें लम्बी और थकी थकी सीं। 18वीं शदी में यह कांगड़ा-कलम अधिक परिपक्व और जानदार पड़ने लगी। पतली अंगुलियां, लम्बी आंखें, पतली कमर, वायु-वेगसे लहराते वस्त्र, नारी सौन्दर्य में चार चांद लगाने लगे। प्रेम-रोमांस तथा पहाड़ी-जन-जीवन में भी इस कला ने नाता जोड़ा।

कांगड़ा कलमके चतुर कलाकारोंने इस पर्वतीय लोक कला में विभिन्न रसोंका दिग्दर्शन करवाया जिनमें शृंगार रसकी प्रधानता रही। सुंदरी राधाका शृंगार एवं केश विन्यास में प्रसाधन सामग्रीका प्रचुर मात्रा

में प्रयोग करती हुई दासी; प्रेम विभोर राधाके मनोभावोंको दर्शानेमें प्रवीण चितेरोंने कमाल किया है ? राजमहलोंमें अथवा राजप्रासादकी अटेहरियोंमें अथवा प्रकृतिके खुले प्रांगणमें प्रणयकी भीनी सुगन्ध (Aroma-OF-Romance) भी भरपूर विखेरी है कांगड़ा चित्रकला शैली ने। यहां तक कि शिकार एवं गाने वजाने के दृश्योंमें मनोरंजनकी अभिव्यक्तिको भी अछूता नहीं छोड़ा कुशल चितेरों ने जहां रागमाला (संगीतके विभिन्न रागोंका चित्रण) का प्रयोग विस्तृत रुपमें हुआ।

कांगड़ा-चित्रकला-शैलीने चम्बा रूमालको भी गहरे में प्रभावित किया क्योंकि कथित शैलीने अन्य क्षेत्रों के अतिरिक्त हिमाचल प्रदेशके चम्बा जिलामें भी विकास पाया था। वास्तवमें चम्बा रूमाल बढ़िया खद्दरके कपड़े पर निकाली गई आकर्षक कशीदाकारीका कमाल है जिसमें कांगड़ा चित्र कला शैली जैसी आकृतियां, फूल पत्तियों एवं वेल वूटोंके साथ साथ रंगों की योजनावद्ध व्यवस्था भी वनी रहती है। इस आकर्षक चम्बा रूमालकी उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इसके दोनों ओर एक जैसी आकृतियां एवं दृश्य सूई धागे से काढ़े मिलते हैं जिनमें रास लीला, रास मण्डल अथवा नृत्यकलाका कशीदाकारी द्वारा एक अनुपम रचना का कथानक है। इसे सूई और रंग विरंगे धागों से तैयार किया गया अनूठा चित्र भी कहें तो वहुत ही उपयुक्त होगा जिसके दोनों ओर शत प्रतिशत, हर दृष्टिकोणसे एक ही कथानक की स्पष्ट झलक मिलती है। ऐसे कलात्मक सुन्दर वर्गाकारके बड़े रूमालको लोग अपनी लड़की को बिवाह-शादीके शुभावसर पर दहेजमें दिया करते थे।

कांगड़ा कलमने होलीके मादक उल्लासको भी अछूते नहीं छोड़ा। यहां होली-चित्रोंका निर्माण चित्र-रचना सौन्दर्य के साथ-साथ होलीके सामाजिक स्वरुपकी मर्यादित एवं मार्मिक अभिव्यक्ति भी कमालकी स्पष्ट मिलती है। कला और जीवन का यह अद्‌भुत संगम अन्यत्र कदाचित् ही देखने को मिले। भोला राम, गुलाबूराम एवं भोरुराम जैसे काव्य कुशल चित्रकारोंने इस कांगड़ा शैलीके चित्रोंमें काव्य की सी

मिठास भरी। इस संदर्भ में 'व्रजबालाओं-की-होली', का चित्रण प्रगीतात्मक (Lyrical) स्वरुपमें उल्लेखनीय है।

कांगड़ा-चित्र-कला-शैली के कई चित्र पुरातव विभाग ने स्थानीय छात्रों के राजकीय उच्च विद्यालय (अब वृष्ठि माध्यमिक विद्यालय) के पुस्तकालयमें जीर्णोद्वार करके उपयुक्त स्थानमें ही सजाए हैं जिनको देखते ही मनुष्य देखते के देखते ही रह जाता है और मनमें विचार आता है कि बंगाल के संस्कृत कवि जयदेवने अपने गीति-काव्य गीत-गोविन्द में राधा-कृष्ण प्रेम के माध्यम द्वारा इस संसार की रचना दर्शाई है—यही मूर्त-विचार यहां के चित्रों में भी स्पष्ट होता है।

अपने शासनके तीतरे और अन्तिम भागमें पहाड़ी राजा उनसे असंतुष्ट हो गये और गुर्खों से मिलकर उन्होंने युद्धकी दुन्दुभि वजा दी। इस नाजुक अवसरपर महाराजा संसार चन्दने अपने समकालीन रणजीत सिंह से सहायता प्राप्त की और विजय श्री प्राप्त की किन्तु रणजीत सिंह ने अवसरका लाभ उठाया और छल द्वारा महाराजासे कांगड़ादुर्ग हथिया लिया। महाराजाका अन्तिम समय दुःखदाई रहा और उन्होंने अपने जीवनके अन्तिम वर्ष लाहौर सरकार की अधीनता में विताए। दिसम्बर, 1823 में तेजस्वी एवं कलाप्रेमी महाराजाके अनेकों स्मारक छोड़कर स्वर्ग सिधारनेके साथ ही, इस अलौकिक कलाका प्रखर सूर्य भी ढलने लग पड़ा। पदमू, प्रभू, भोरू, दाखू राम और कांगड़ाके पास नगरोटा वगवां में, 'समलोटी', ग्राम निवासी स्व० गुलाबू राम जैसे निपुण चित्रकारों द्वारा बनाए गये असंख्य चित्र अब विश्वके पुस्तकालयों, संग्रहालयों आदि की शोभा बढ़ाते हैं और कला प्रेमी महाराजा संसार चन्द-कांगड़ा-हृदय-सम्राट्, द्वितीय समुद्र गुप्तकी उदार दानशीलताका गुण-गान आज भी इतिहास करता है। ऐसी अमर कलाको प्रोत्साहन देने वाला था वह कला-प्रेमी, अमर हस्ताक्षर महाराजा संसार चन्द जिसके इधर उधर विखरे पड़े राजमहलके भग्नावशेष आज भी उसकी तेजस्विता को बोलते हैं।

अब हिमाचल प्रदेश सरकारने धौलाधारकी सुरम्य पृष्ठ भूमि में

वसे पर्यटन स्थल एवं कांगड़ा जिला मुख्यालय धर्मशालामें कोतवाली बाजार में जिला पुस्तकालयके समीप एक भव्यभवनमें, 'कांगड़ा कला संग्रहालय', की स्थापना की है ताकि कांगड़ा की विश्वप्रसिद्ध धरोहर कला एवं संस्कृति सुरक्षित रहे। अन्य कलात्मक वस्तुओंके अतिरिक्त कांगड़ा चित्र कला शैली के दुर्लभ चित्र भी इस संग्रहालय में प्रदर्शित हैं।

स्व० गुलाबू राम के पुत्र पूर्णचन्द से एक भेंट :

कांगड़ा-चित्र-कला शैली के प्रवीण चितेरे हिमाचल प्रदेश में जिला कांगड़ा में समलोटी ग्राम स्थित स्व. गुलाबू राम रैणा का जन्म स्व. मोहन लाल के यहां 1879 में हुआ और 85 वर्ष की दीर्घायु में 1964 में वे स्वर्ग सिधरे। स्व. मोहन लाल स्वयं पटवारी थे और चित्रकारी भी किया करते थे। उनका एक भाई पुखु भी था। स्व. गुलाबू राम अपने पुत्र श्री पूर्ण चन्द के साथ उन दिनों चित्रकारी में रूचि रखने वाले अमीरों के घरों में जा-जा कर चित्रकारी किया करते थे। लोग उन्हें चित्रकारी केलिये पत्र द्वारा या स्वयं आ कर सूचना दे जाते थे। चित्रकारी में प्रयोग आने वाले रंग मालिक मकान के ही होते थे। वे पूरी बैठक-कक्ष (दीवारों) की चित्रकारी करवाते थे और दैनिक मजदूरी आठ, बारह: या सोलह आने (एक रुपया) प्राप्त होती थी। यदि रात रहना पड़ता था तो खाना पीना मकान मालिक की ओर से हुआ करता था। उन्होंने घनियारा में चुनीलाल महाजन,पपरोला में महता अमर चन्द, पट्टी सलयाणा में बाबू हरदयाल, नगरोटा बगवां में धुन्दू राम महाजन के घरों में जाकर चित्रकारी की थी। कांगड़ा के ऐतिहासिक शक्ति पीठ बज्रेश्वरी मन्दिर की डयोढ़ी की छत्त एवं दीवारें, पुराना कांगड़ा में ज्यन्ति माता, बैजनाथ में तारा देवी मन्दिर में, कुल्लू में भेखड़ी देवी के मन्दिर में, जोगिन्द्र नगरके आर्यासमाजमन्दिर में, चोंतड़ा के मन्दिर में (सूदों द्वारा कराई गई) निर्धनता में, सादा जीवन व्यतीत करने वाले, सफेद पगड़ी धारी कांगड़ा-चित्र-कला शैली के अमर कलाकार स्व. गुलाबू राम की अमिट छाप आज भी अमर है। जब पिता पुत्र को चित्रकारी के व्यवसाए से संतोषजनक आर्थिक लाभ न होता था

टीहरा स्थित राजमहल
(सुरेन्द्र गृह) का मुख्य प्रवेश द्वार।

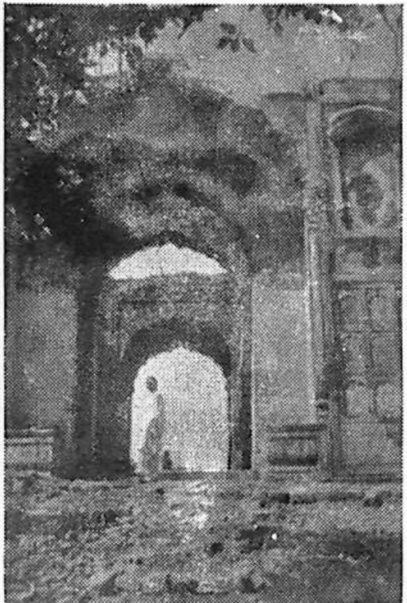

टीहरा स्थित गौरी-शंकर मन्दिर के
वाहर लेखक (वाएं से) पुजारी तथा
लेखक का मित्र

टोहरा स्थित महाराजा संसार चन्द का सभा भवन (वाहरा दरी)

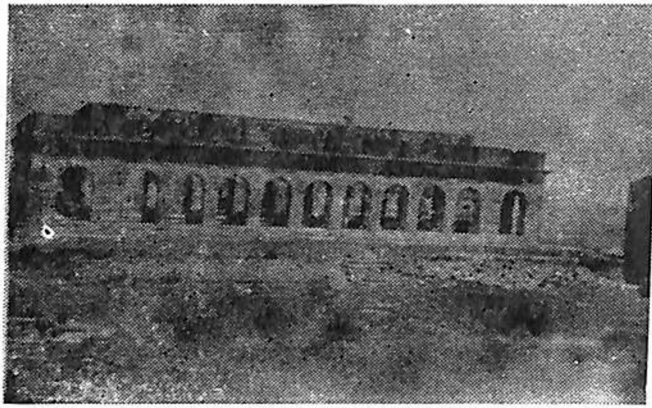

टीहरा स्थित पानी का बड़ा तालाब

सुजानपुर स्थित नर्मदेश्वर का मन्दिर।

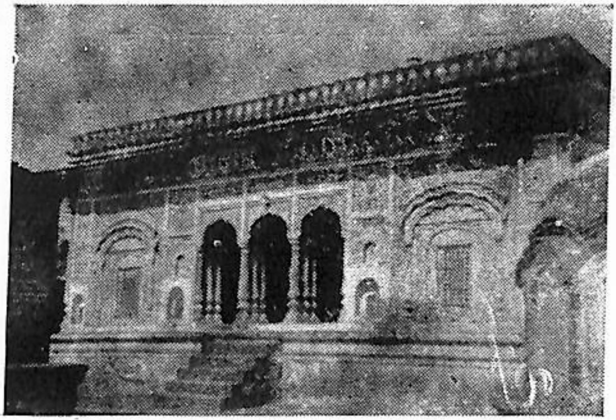

पूर्व से सुजानपुर नगरी का प्रवेश द्वार
भलेठ का दरवाजा।

होली मेले पर एक (ध्यान) स्वांग

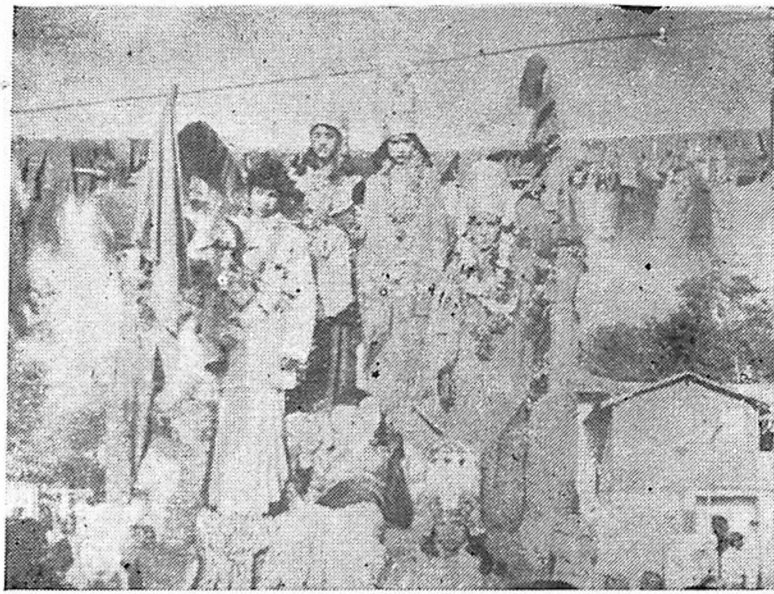

होली मेले की गहमा गहमी (सुजानपुर)

श्री काली कुमार गुप्ता

लेखक – ओम गुप्त

Onlv photographs on art paper have been printed at
Ex S. Man Printing Press, Nagrota Bangwan
Kangra (H. P.)

कांगड़ा किले का भीतरी भाग

सिद्धबाबा स्वरुप गिर जी का मन्दिर
(सुजानपुर टीहरा)

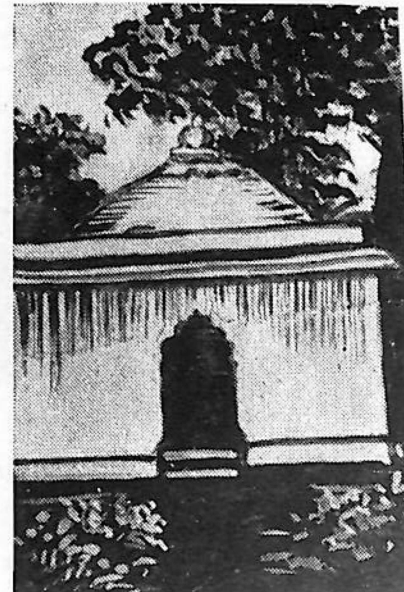

चम्बा रूमाल की कशीदाकारी का कमाल (रास मण्डल)

कांगड़ा चित्रकला शैली की एक झलक (भौण) कांगड़ा मन्दिर में।

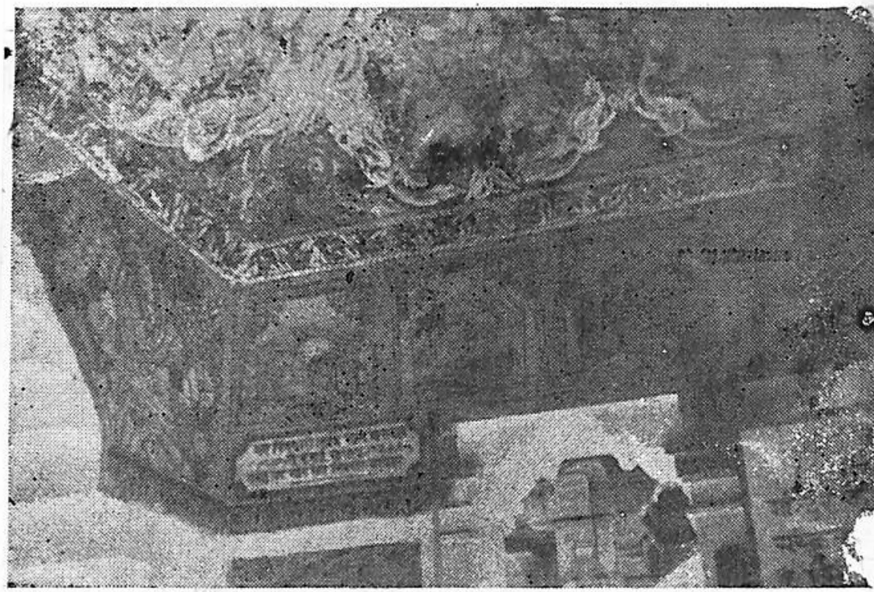

धर्मशाला स्थित कांगड़ा कला संग्रहालय।

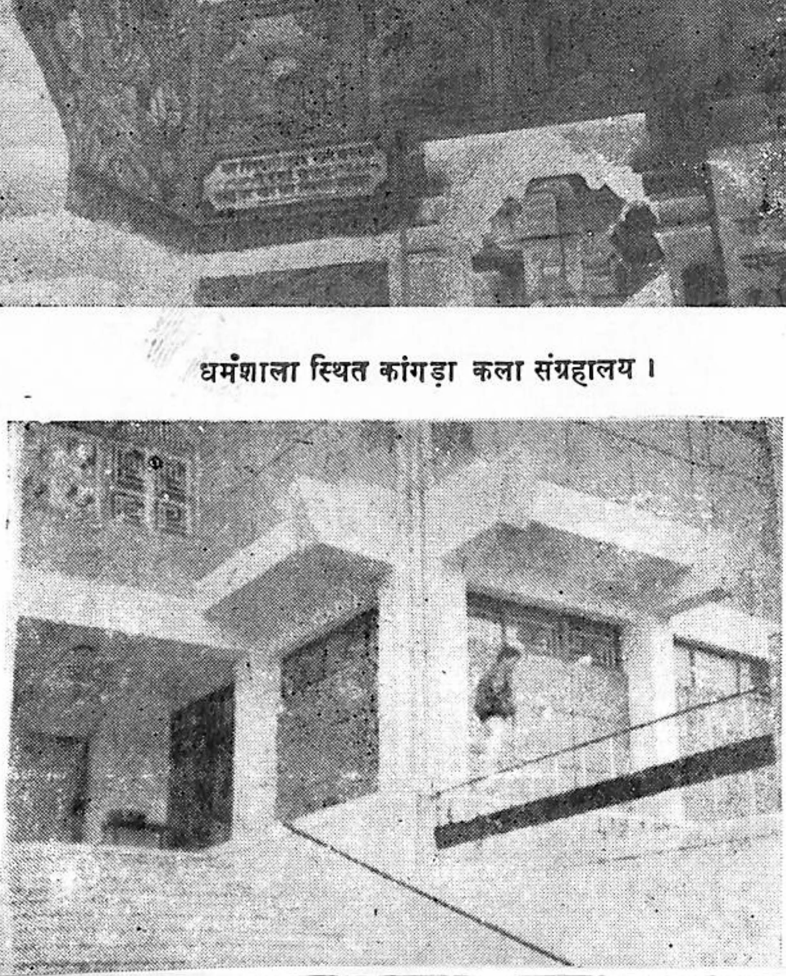

तो वे लकड़ी के खिलौने बना बनाकर उन्हें घनियारा, दाड़ा, नगरोट बगवां, सलयारणा में लगने वाले मेलों में जा कर बेचा करते थे जिन से अच्छा आर्थिक लाभ हो जाया करता था।

आजकल चित्रकार पूर्णचन्द जिन्हें श्री एम. एस. रंधावा (पुरातत्त्व विभाग) ने उनके कुशल चित्तेरा होने को प्रमाणित किया, उनका यह ऐतिहासिक कीमती दस्तावेज है यहां यह और भी गौरव की बात है कि हिमाचल सरकार उनकी कृतियां समय समय पर क्रय करती रहती है। इस विख्यात पैतृक कला को लुप्त होने से सुरक्षा तो जारी है उनके द्वारा परन्तु भूखे पेट भक्ति कब तक होती रहेगी ? उनकी कृति के वे दाम प्राप्य नहीं जो होने चाहिएं उनके साथ बात चीत से स्पष्ट होता था कि जब तक माने हुए कलाकार को स्थाई आर्थिक (सहायता) सुरक्षा प्रदान नहीं हो जाती; कांगड़ा चित्र कला शैली लुप्त होने से कब तक बच पाएगी। उनका परिवारिक आत्मगौरव यह स्पष्ट करता है कि पच्चास साठ रुपये की मासिक सहायता हम क्यों कर स्वीकार करें ? हम खिलौने बनाकर (बेच कर) ही अच्छा गुजारा कर लेंगे। जिस कुटीर उद्योग विभाग से उन्होंने अवकाश प्राप्त किया है वहां पैंनशन की व्यवस्था ही नहीं थी। कवि और कलाकार प्रजातन्त्र में भी आर्थिक असुरक्षा में जिएंगे ? उनके द्वारा बने लकड़ी के आकर्षक रंग विरंगे खिलौने देखकर उनकी काष्ट-कला की चतुराई की प्रशंसा स्वतः ही मुंह से निकल पड़ती है।

(1) वज्रेश्वरी मन्दिर कांगड़ा की ड्योढ़ी की दीवारों एवं छत्त पर लाला शाम नारायण ने संवत 1994 (सन् 1937) में चित्रकार (कांगड़ा) गुलाबू राम एवं भोरु राम (पुराना कांगड़ा निवासी) से करवाई। इन दोनों चित्रकारों के नाम अलग अलग हिन्दी एवं अंग्रेजी में मोटे शब्दों में रंगों से लिखे गये हैं। सारी की सारी छत्त राधा—कृष्ण रोमांस एवं रंगीन वेल बूटों से पटी पड़ी है। दीवारों पर मां दुर्गा के विभिन्न रूप चौखटों में वेल बूटों सहित सजे दर्शाए गये हैं। छत्त में राधा-कृष्ण रोमांस के अंकित दृश्य इतने आकर्षक हैं कि मनुष्य अपनी गर्दन टेढ़ी किए देखते

ही रह जाता है और मोहक इतने कि चित्रकारों की प्रशंसा में मुंह खुले का खुला ही रह जाता है। मनुष्य सोच में ही खो जाता है कि इन दृश्यों एवं चित्रकारी के विषय में कहें तो क्या कहें। चमकते दमकते रंगों का पक्कापन और दृश्यों की सजीव अभिव्यक्ति की अपनी गति और अपनी क्षमता चित्तेरों ने भरपूर दर्शाई है चित्रकारी में प्रयुक्त रंग आज भी इतने पक्के हैं कि समय के प्रभाव से कुछ कुछ मिट जाने पर भी कला एवं चित्र में दर्शक के मन में किसी त्रुटि का अनुभव नहीं करवाते।

(2) धुन्दू राम महाजन के हां बैठक में चित्रकारी देवी देवताओं के रूप में हुई है। दीवारों में ऊपर छत्त के साथ लगती जो वेल चित्रित की गई है वह देखने योग्य है। गृहस्वामिनी ने बताया कि यह चित्रकारी लगभग 1947 में गुलाबू राम और उसके पुत्र ने की है। समस्त चित्रकारी अभी भी काफी साफ है।

अभेद्य-कांगड़ा महादुर्ग :

इस दुर्ग की भौगोलिक स्थिति तथा निर्माण कला और मजबूती ऐसी थी कि हिमाचल प्रदेश स्थित, इस पर्वतीय प्रदेश की कूंजी कहा जाता था। कथित प्रदेशके जिस राजाके पास यह भव्य भरकम मजबूत दुर्ग हुआ करता था वही यहां का मुख्य शक्तिशाली शासक गिना जाता था। यह कह पाना अत्यन्त कठिन है कि यह ऐतिहासिक महादुर्ग कब और किसने निर्मित करवाया। भवन निर्माण कला वैज्ञानिकों के लिये अनुसंधान का यह रुचिकर विषय है। यह स्पष्ट है कि इस दुर्ग का वर्णन पृथ्वीराज चौहान के शासन काल में आया और महाभारत युगमें यह महादुर्ग अस्तित्व में था जहां वीर कटोच वंशज 234वें त्रिगर्त नरेश सुशर्मा, महाभारत युद्ध में पाण्डवों के विरुद्ध लड़ा और इसने ही चक्रव्यूह की रचना के समय, अभिमन्यू के पिता अर्जुन को उलझाए रखा। परिणाम स्वरुप वीर अभिमन्यू मारा गया और अगले दिन युद्ध में वह स्वयं वीरगति को प्राप्त हुआ। कनिंघम के अनुसार इसी त्रिगर्त (कांगड़ा) नरेश सुशर्मा ने पुराना कांगड़ा नगर बसाया और दुर्ग में जैन तीर्थ की स्थापना की। (इस तीर्थका वर्णन आगे आएगा)

इस महादुर्गने इतिहासके कइ पन्ने लिखे और युद्ध देखे। अधिकांश यह दुर्ग कटोच राजवंशके अधिकार क्षेत्र में ही रहा। महमूद गज़नवीके सन् 1009 के आक्रमणोंके दौरान दुर्गका ब्योरा आता है। इसके स्थान का निर्धारण एवं निर्माण कला कौशल शतप्रतिशत वैज्ञानिक है। प्रकृति की गोदमें बसा और प्राकृतिक साधनोंसे निर्मित यह ऐतिहासिक महादुर्ग बनेर (वाण गंगा) और मांझी (मनूनी) खड्डों के संगम पर ऊँचे पर्वत शिखरपर पुराने कांगड़ेके दक्षिण-पश्चिममें 76°,15′ देशान्तर और32°,5′ अक्षांश में स्थित है। इस दुर्गके मध्य तीन और शिखर हैं जिनमें सबसे ऊँचे शिखरपर राजभवन थे और शेष दो छोटे पर्वत शिखरों में से एक पर मुख्य प्रवेशद्वार की बाईं ओर की दीवार में तोपें दागने केलिये अनेक छोटे छोटे सुराख आज भी सुरक्षित हैं। राजभवनों के पीछे वाले छोटे शिखरपर युद्ध सामग्री का भंडार हुआ करता था।

कथित बनेर एव मांझी खड्डें दुर्ग को सुरक्षित खाई का काम प्राकृतिक रूपमें देती हैं। बनेर खड्डकी ओर दुर्गकी दीवारकी ऊंचाई तीन सौ फुट है। सम्पूर्ण दुर्ग लगभग चार किलोमीटर टेढ़ी मेढ़ी लम्बी पक्की दीवारसे घिरा पड़ा है। इस प्रकारका शत्रु के प्रवेशसे सुरक्षित रहा है यह दुर्ग।

दुर्गके प्रांगणमें पहले दाएं पर दृष्टिपात करें तो राजपरिवार के स्नानार्थ निर्मित पक्के स्नानगृह अर्थात्, 'हमाम,' दृष्टिगत होता है जो सीधे खुले जलागार से (तालाब से) जुड़ा हुआ है जहां दीवारमें देवी देवताओं की मूर्तियां आज भी दिखाई देती हैं। अब इस पानी के स्रोत को पास में ही पाइप द्वारा मोड़कर गोमुखसे बहाया गया है। यह पानी स्वाद में निराला है। हमामके तीन छोटे लगभग वर्गाकारके- महराबदार कक्ष हैं जो भीतर ही भीतर और छोटे भागों में इस प्रकार से गुम सुम बटे हैं कि कहीं हवाका झोंका भी न प्रवेश कर पाए। प्रांगणकी ओर खुलने वाले प्रकाश के लिये तीन लघु रोशनदान हैं। इस, हमामकी वैज्ञानिक चतुराईका क्या कहना।

दुर्ग में प्रवेश मुख्य प्रवेशद्वार से है जिसके ऊपर, 'रंजीत सिंह गेट', नामकी नवीन पट्टी लगी है, वहां पत्थरमें खुदा गुरुमुखी में कुछ लिखा है। ऐसा प्रतीत होता है कि रणजीत सिंह को अपना नाम चिरस्थाई रखने की बड़ी लालसा थी। मुख्य प्रवेश द्वारके पूर्व एक लोहेकी तारोंका झूलेदार पुल हुआ करता था जिसके नीचे बनेर एवं मांझी खड्डों का पानी भरा रहता था ताकि दुर्ग में कोई शत्रु प्रवेश न कर सके। स्पष्ट है कि उस समय कथित दोनों खड्डों का जलस्तर काफी ऊँचा था जो अपेक्षाकृत अब बहुत भिन्न है और वहां अब पक्का सड़कनुमा पुल है। इसी मुख्य-प्रवेश द्वारमें प्रवेशकर दाईं ओर एक पगडंडी नीचे जाती है, वहांसे मांझी खड्को पारकर, ऊँची पहाड़ी पर जयन्ती देवीका प्राचीन मन्दिर स्थित है जिसका नवीनीकरण किया जा रहा है। मन्दिर की यह पहाड़ी दुर्गकी अपनी पहाड़ी से कहीं अधिक उन्नत है।

कहते हैं कि कांगड़ा दुर्ग स्वयं तो सुदृढ़ था ही परन्तु दुर्गा सप्तशती में वर्णित जयन्ती माता द्वारा दुर्गकी रक्षाकी कल्पनाकी मार्मिकता है। यथा :—

(1) रक्षाहीनं तु यत् स्थानं वर्जितं कवचेनतु ।
तत्सर्वं रक्षमे देवी जयन्ती पापनाशिनी ॥

अर्थात् ऐसा स्थान जिसकी रक्षा नहीं हुई है और जो कवच से वर्जित हो गया है (जो कवच में नहीं आ सका है)। हे जयशील ! पापोंको नष्ट करने वाली दुर्गे देवी उस मेरे सभी अंग और स्थान की रक्षा करो।

(दुर्गा कवच से)

जयन्ती देवी का उल्लेख मार्कण्डेय पुराणके देवी माहात्मयके प्रसंगमें अर्गला स्त्रोतमें मिलता है। यथा :—

(2) ओम जयन्ती मंगलाकाली भद्रकाली कपालिनी ।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमो अस्तुते ॥

अर्थात्— जय ही जिसका शील है, जो मंगल करने वाली है, जो कालको अपने अधीन रखने वाली है और जो दुष्टोंका नाश करके कल्याण

करने वाली है और जो मनुष्यकपालको हाथ में लिये दुष्टों का रक्त पीने वाली है और जो बड़ी कठिनाई से प्राप्त होती है, जो अत्यन्त सहनशील और क्षमा करने वाली है और जो शिव (कल्याण) स्वरूप है और सम्पूर्ण विश्व प्रपंचोंको धारण करने वाली है, जो देवी देवताओंका कल्याण करने वाली है और जो मित्रों का पालन पोषण करने वाली है, ऐसी, हे भगवती दुर्गे ! आपको बारंबार नमस्कार है !

(अर्गला स्तोत्र से)

आगे बढ़ने पर सीढ़ियां ऊपर तक चली गई हैं । ये सीढ़ियां सुविधाजनक इस प्रकार बनी हैं कि उन्हें—चढ़ते समय न सांस फूलता है न घुटन अनुभव होती है । इन सीढ़ियोंको चढ़ते समय यदि ध्यान से देखें तो बाएं पर जाती दीवारके कुछ भागकी मुरम्मत की गई है जहां एक पत्थर पर 1878 A-D खुदा है, पास ही एक पत्थर में उत्तकीर्ण किसी देवता की एक मूर्ति भी है ।

मुख्य प्रवेशद्वारके आगे दो और द्वार आते हैं जिनमें ऊपरका द्वार, 'जहांगीरी दरवाजा', या 'बाहरी दरवाजा', और मध्यद्वार, 'अमीरी दरवाजा', कहलाता था । जहांगीरी दरवाजेके पूर्व, 'आहिनी दरवाजा , या 'लोह द्वार' (आहिनीका अर्थ लोहे का बना हुआ) आता है जो नवाब अलिक खांनके नामपर बनाये गये थे । इसके पश्चात्, 'अंधेरी दरवाजा', आता है जहां से बाएंको, 'दर्शनी दरवाजे' से होता हुआ मार्ग लक्ष्मीनारायण मंदिर (लगभग 9वीं-10वीं शताब्दी A.D. निर्मित) और शीतला एवं अम्बिका (अम्बालिका) देवी मंदिरको जाता है । यही अम्बालिका महाभारतमें शिखंडी बनी थी । फिर उत्तरको मुख्यमहलको सीढ़ी जाती है जो, 'शीश महल', कहलाता था ।

शीश महलकी ओर आनेके पहले बाएं पर, 'आदिनाथ', का एक जैन मंदिर है जिसकी मूर्ति सुखासनमें बैठी अवस्थामें उत्तकीर्णताका कलाकौशल आज भी दिखाती है । जैनकालमें जैनयात्री यहांकी यात्राएं किया करते थे जिनका वर्णन, 'जैनपत्रिकाओं', में भी मिलता है । यह मंदिर वि० सम्वत्

1523 अर्थात् सन् 1466 A.D. में 458वें कटोच राजा संसारचन्द प्रथम ने निर्मित करवाया था जिसका सिंहासनारोहण सन् 1435 में हुआ और जिसके समयका सिक्का, 'संसार' था। (आज भी सुजानपुर टीहरामें कुछ एक जैन परिवार हैं जो सोने-चांदी एवं पंसारीकी दुकानें करते आ रहे हैं। अब दुर्ग की बाहरकी सीमामें पास ही नवीन जैनमंदिरका भव्य भवन निर्मित है)। कथित आदिनाथ मंदिरके क्षेत्रमें कचेहरी भी हुआ करती थी। इसी क्षेत्रमें एक दीवारमें फर्शको छूती हुई प्रेमी-प्रेमिका की प्रणयमुद्रामें एक मूर्ति भी उत्तकीर्ण है। इससे ऐसा आभास मिलता है कि यहां राज-परिवारका पूजन कक्ष हुआ करता था।

शीशमहलके आगे Polygon आकारका खुला पक्का चबूतरा आता है जो हरी-भरी शुद्ध-शान्त वादीको ऊपरसे झांकता है। यदि इसे निरीक्षण टॉवर कहें तो बहुत उपयुक्त होगा जहां से दूर तकके पहाड़ी क्षेत्रोंका जायज़ा लिया जा सकता है। कहते हैं कि इसी खुले, ऊंचे, एकान्त चबूतरेपर राजे राग-रंग, नृत्य-गायन, महफिल रचाया करते थे। चबूतरेके सामने कपूर सागर है जो सागर तो नहीं तालाब ही है। कपूर सागरके पहले बाहरा कमरे हैं तथा दाएं पर एक सूखा तालाब है। इसके पहले जहांगीरी मसजिद है। शीशमहलके नीचे एक गुप्त द्वार है जो मांझी खड्ड पर खुलता है। दूसरा गुप्त द्वार चबूतरेसे होकर बाणगंगापर खुलता है तथा तीसरा कथित दोनों खड्डों के संगमपर खुलता है जिसे संगमी द्वार भी कहते हैं। ये गुप्त द्वार आज भी सुरक्षित अवस्था में हैं।

यदि महमूद तुग़लक़ने इस महादुर्गको सन् 1337 में जीता तो उसके उत्तराधिकारी फिरोज़शाहने इसे 1351 में निजाधीन किया। किन्तु सन् 1621 में जहांगीरने इसे अपने अधिकारमें ले लिया। अठाहरवीं शतिके उत्तरार्धमें गवर्नर नवाब अलिफ खांनकी मृत्यु के बाद 1786 में संसार-चन्दने इस अपनी पुरानी पुर्खोंकी धरोहरको जीत लिया। किन्तु 1809 में रणजीत सिंहने छलद्वारा महाराजा संसारचन्द से इस महादुर्गको हथिया लिया और 1846 तक यह दुर्ग सिखोंके हाथ रहा जब इसे अंग्रेजी सत्ताको सौंपना पड़ा।

1905 में इतिहास प्रसिद्ध कांगड़ाका भूचाल इस ऐतिहासिक महादुर्गको वहुत कुछ ध्वस्त कर गया जिसके भग्नावशेष आज भी इसकी विश्वप्रसिद्ध ऐतिहासिकता को बोलते हैं। दुर्गकी अभेद्य दीवार और निर्माणकलाकी वैज्ञानिकता सीमा लांघ चुकी है। अब इस दुर्गकी छत्तें एवं कक्षोंकी दीवारें गिर चुकी हैं।

दुर्गके उत्तरमें पुराना कांगड़ा नगर पड़ता है। नगरकोट या कोट-कांगड़ा का सम्बन्ध इसी पुराना कांगड़ा से है। यहांके निवासी उन दिनों नगरकोटिए कहलाते थे। अब प्रसिद्ध शक्तिपीठ मां वज्रेश्वरी मंदिर के साथ नया कांगड़ा बसा हुआ है।

इस दुर्गमें घूम-फिर कर पर्यटक अथवा सैलानीमन यह स्वतः सोचता है कि उस विशाल दुर्गके निर्माणमें कितना समय और धन व्यय हुआ होगा। कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि कांगड़ा दुर्ग वास्तव में महादुर्ग ही है जिसकी विपुल धनराशिको आक्रमणकारी ऊंटोंपर लाद-लाद कर ले जाते रहे।

बसमार्ग द्वारा जुड़े, गहन हरी-भरी घाटीमें बने, अब इस भव्यतम एवं ऐतिहासिक महदुर्गकी भारतीय पुरातत्व विभाग देख-रेख करता है। सन् 1988 में इस विभागने, 'विरासत-धरोहर-सप्ताह', भी मनाया था जब एक Folder में इस दुर्गके विषयमें संक्षिप्त, ज्ञानवर्धक जानकारी दी गई थी।

महाराजा संसार चन्दका परिवार :—

महाराजा संसार चन्दके राजमहल को दो रानियों ने सुशोभित किया—रानी सकेतड़ (सुकेतन) और रानी गद्दण। रानी सुकेतन सुकेत नगर से थी जो हिमाचल प्रदेश स्थित आजकल सुन्दर नगर कहलाता है। सुकेत नगर अपने खिले चेहरे और सुन्दर निवासियों के लिये पहले से ही प्रसिद्ध रहा है। वहां के राजघराने के सौन्दर्य की चर्चा आजतक हिमाचल के लोक गीतों में गुंजाएमान है। दूसरी ओर हिमाचल प्रदेशके ऊपरी पर्वतीय आंचल में बसने वाली भेड़ बकरियों के रेवड़ के रेवड़ पालने

वाली घुमक्कड़ गद्दी जनजाति भी सौन्दर्य में कम नहीं है। इसी रुप-यौवन सम्पन्न जाति से प्राकृतिक नारी सौन्दर्य की खान रानी गद्दण थी। भले ही वह गरीब घराने की थी परन्तु उसका सौन्दर्य उसे राजमहल तक खींच ले आया। भला विश्व-प्रसिद्ध अनूठी चित्रकला का पारखी महाराजा संसारचन्द यह कैसे भूल सकते थे कि सौन्दर्य धनाड्य-घराने में ही सीमाबद्ध नहीं हैं। रानी गद्दण से पुत्र युद्धवीर चन्द हुआ जो अंग्रेजी सरकारका पक्षधर था और बड़ी सूझ-बूझ से काम लेता था। इसने अपनी बहिन का विवाह महाराजा रणजीत सिंह से किया और जागीर एवं राजा की उपाधि प्राप्त की। इसके पौत्र राजा नरेन्द्र C.S.I., बड़े विद्वान प्रतापी राजा हुए। महारानी सुकेतन से प्रमोद चन्द और बड़ा लड़का अनिरुद्ध चन्द जो महाराजा का ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते अपने पिता के बाद राज्य सिंहासन पर अरुढ़ हुआ जिसका वंश 1851 में समाप्त हो गया। राजा अनिरुद्ध चन्द स्वयं कोई चतुर शासक न था और राजा रणजीत सिंह के आतंक से तंग आकर उसने स्वयं राज्य त्याग दिया और रक्तकी शुद्धता एवं आत्मगौरव की रक्षा के लिये इसने अपनी दोनों बहिनों का विवाह गढ़वाल के राजघराने में राजा सुदर्शन शाहके साथ किया क्योंकि वह जानता था कि विवाह और झगड़ा बराबरी वालों में ही होता है। आगे चल कर अनिरुद्ध चन्द के पुत्र रणवीर चन्द ने 1933 में रणजीत सिंह द्वारा दी गई, 'महल मोरी', की लगभग पचास हजार रुपये की जागीर स्वीकार की। 1835 में एक प्रसिद्ध पर्यटक एवं इतिहासकार अंग्रेज 'विजन' ने रणवीर चन्द का आतिथ्य स्वीकार किया। रणवीर चन्द निःसन्तान ही स्वर्ग सिधार गये और फल स्वरुप इनका दूसरा भाई प्रमोद चन्द राज गद्दी पर बैठा। परन्तु वह 1848 में महलमोरी से चला और 'रेह' (रिआह) और 'अभिमानपुर' को जीतकर अपने प्रदेशका राजा बना। परन्तु उसे अपनी योजना में सफलता न मिली और बन्दी बनाकर अलमोड़ा भेज दिया गया जहां वह निःसन्तान ही चल बसा और इस प्रकार महाराजा संसार चन्द के परिवार की परिपाटी सम्पन्न हुई।

सुजानपुर की ऐतिहासिक होली :—

सुजानपुर नगर की होली इस सीमा तक लोकप्रिय एवं प्रसिद्ध थी कि निःसंदेह यह कहा जाता है कि यदि द्वारकाधीश श्री कृष्ण ने गोकुल में सखाओं के साथ रंग बरसा-बरसा कर, खुशी से प्रेम भरे भावों से खूब होली खेली जो साहित्य का अंग एवं भारतीय संस्कृति का प्रतीक बन गई। उनके पश्चात् यदि होली किसी ने खेली तो कटोच राजवंशज कांगड़ा-हृदय-सम्राट् महाराजा संसारचन्दने अपने दरबारियों, राजकर्मचारियों और विशेष नागरिकों के साथ स्नेह-सिक्त उदार हृदयसे खेली जिस के लिए टीहरा स्थित बाहरादरी के निकट निर्मित एक छोटे हौज़ को पानी और रंगों से भर दिया जाता था (उस हौज़ के भग्नावशेष आज भी देखे जा सकते हैं)। वर्षों बीत जाने के पश्चात् आज भी विस्तृत रूपमें उनकी ऐतिहासिक सुन्दरी नगरी राजधानी सुजानपुर में सांस्कृतिक धरोहरके रूप में हर वर्ष यह होली मनाई जाती है जिसके विशाल मेले की शोभा कथित नगरी के जीवनको और भी सुन्दर बना देती है।

महाराजा इस उल्लसित महोत्सव पर व्यास नदी के उस पार आलमपुर में होली दरबार भी आयोजित किया करते थे। सुजानपुरकी हर्षोल्लास परिपूर्ण रंगों भरी होली परम्परानुसार कथित नगरी के विस्तृत, खुले सपाट मैदान में मनाये जाने की प्रथा आज तक चली आ रही है। दूर दूर से आए व्यापारी, यहां इस मैदान में दुकानें लगाते हैं जहां हलवाईयों, मनीयारों, होटलों एवं चाय-पान वालों, कुम्हारों के अलग-अलग लम्बी पंक्तिबद्ध बाजार सजते हैं। दूसरी ओर झूलों स्थानीय पहाड़ी बोली में, ढोलने) की कतार लगती है जिसके पास ही दिन-रात टमक (बड़ा नगारा), ढोल बजते रहते हैं जो मेले में गहमा गहमी तीन रात-दिन तक भरते रहते हैं और होली में हर्षोल्लास और रंगीनी भरते हैं। दूसरे खेल तमाशों की भी मेले में भरमार रहती है जो जनताका भर पूर मनोरंजन करते हैं। सरकारी विभाग भी अपनी प्रदर्शनियां लगाते हैं। प्रत्येक दिन शामको भारतीय पुराणों में वर्णित देवी देवताओंकी होली संबंधित

परम्परागत झांकियां (स्थानीय बोली में डोले) निकाली जाती हैं जिनमें अन्य गाथाओंके अतिरिक्त, 'प्रहलाद भक्त' की गाथा विशेष रूप से स्थानीय बोली में, ध्यान कहलाने वाली इन झांकियोंमें दर्शाई जाती हैं। इन पुनीत झांकियों की संख्या प्रतिदिन बढ़ा दी जाती है ताकि होली पर्वकी विस्तृत व्याख्या जनमानस तक पहुंच सके। ये झांकियां देशी बाजों-गाजों जैसे देसी शहनाई (पीपणी), नगारे, डफले, तुर्ही, नरसिंगे की घाटी में गूंजती शुभ-सूचक ध्वनिके साथ नगर की परिक्रमा करती हैं। यहां विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि इन आकर्षक झांकियोंको स्थानीय कांगड़ी बोली में, 'ध्यान' कहा जाता है जिसका गहन अर्थ है, 'स्मृति', कि जिस स्मृतिमें यह रंगीन, मन भावन होली-उत्सव मनाया जाता है। इन झांकियोंके साथ गत्ते पर लिखे प्रत्येक झांकीका संक्षिप्त विवरण लटका रहता है। इन एक साथ निकलने वाली झांकियोंका पुराना दायित्व ऊपर के बाजार की डोगरा और मध्य बाजार की पुवारियों पर है। इन प्रबन्धोंमें पुराने बजुर्गों स्व० भोंठा शाह और स्व० भगवान दास पुवारी के नाम विशेष रुपसे रेखांकित करने योग्य हैं जिनका मार्गदर्शन आज तक काम देता आ रहा है। पहले इन भारी ध्यानों के डोलोंको स्थानीय झीवर (लोग) अपने कंधोंपर उठाकर चलते थे परन्तु अब आधुनिक बदलते परिवेशमें कथित, 'ध्यान' ट्रक, जीप और रथों पर निकाले जाते हैं। इस पर्वतीय आंचल की और पुरातन सांस्कृतिक धरोहरको सजीव बनाए रखने के उद्देश्यसे और महत्व देखकर, हिमाचल सरकार अब यहांकी ऐतिहासिक होलीको राज्य-स्तर पर मनाती है जहां रातको अन्य कलाकारों के अतिरिक्त स्थानीय कलाकारों को भी अपनी कलाका प्रदर्शन करने और जनताका मनोरंजन करनेका स्वर्णिमा-वसर प्राप्त होता है। यहां होलीका विस्तृत उल्लेख इस धारणाको और भी गहराता है कि हिमाचल प्रदेश अध्यात्मवाद में कितना आगे था और अब भी है। वर्तमान समयमें, विश्वमें अध्यात्मवाद का संकुचन बढ़ता जा रहा है और भौतिकवादकी जकड़ विस्तृत होती जा रही है। परन्तु

हिमाचल प्रान्त इस सन्दर्भ में अपवाद स्वरुप आज भी बने खड़ा है। वह भौतिकवाद को अपने ऊपर हावी नहीं होने देता। हिमाचल प्रदेश की पावन भूका यही सांस्कृतिक-सशक्त संदेश है क्योंकि प्रकृति-प्रेमीकी आत्मा यहां हिम मण्डित पर्वतोंके समूचे आंचलके शुद्ध-शान्त समीर झकोरोंके बीच विभिन्न दृश्योंको आंखों में समेटे झूम उठती है—मनकी ऐकाग्रता के साथ चिन्तनमें मन रमण करता है—यही आत्मा का आनन्द है, मनका परितोष है।

सुजानपुर नगरका आधुनिक रुप

विद्वानोंकी नगरी सुजानपुर (टीहरा) में अब काफी परिवर्तन आ चुका है। यदि भव्य राधा-कृष्ण मन्दिर से आरम्भ कर नगर के मध्य स्थित विस्तृत स्पाट मैदानकी परिक्रमा करें यो नगरके परिवर्तित रुपको सरलतासे समझा जा सकता है। राधा-कृष्ण मन्दिरसे आगे बढ़ें तो पुरानी संस्कृत पाठशालाका भवन आता है। यह पाठशाला अब बन्द हो चुकी है। आगे चलें तो विकास खंड अधिकारी के कार्यालय का बड़ा भवन आता है और साथही छोटी तहसील के तहसीलदार का कार्यालय भी स्थित है। यहीं से नया मोटर मार्ग चोरी आदि ग्रामों को जाता है। फिर भगवान महावीरके छोटे से मन्दिर से आगे बढ़ने पर 'महाराजा संसारचन्द एस० डी० हाई स्कूल का भव्य भवन स्थित है जिसका स्थानीय महात्मा स्व० तुलसी राम नागने शिक्षान्यास किया था और जिसमें सुयोग्य एवं अनुभवी मुख्याध्यापक स्व० कालि कुमार गुप्ता आजीवन सेवारत रहे जिनके नेतृत्व और पथ प्रदर्शनमें कथित स्कूल ने शिक्षाके क्षेत्र में Quality and Quantity, दोनों में कमालका नाम कमाया। इस विद्यालयको अब राजकीय वरिष्ट माध्यामिक विद्यालके नाम से जाना जाता है। इस विद्यालयके साथ ही पुराना डाक-बंगला है और साथ ही सैनिक स्कूल की कैंटीन और छात्रवास है जिसके थोड़े अन्तर पर सैनिक स्कूलका आधुनिक भव्य भवन उसपार धौलाधारकी वर्फीली श्रृंखलाओंके सामने अपना उन्नत भाल लिये खड़ा है। इस भवनके पीछे राधा स्वामी सत्संग का परिसर है। जरा और आगे बढ़ें तो होशियारपुर को जाने वाला पुराना मोटर मार्ग

आता हैं जिसका अब प्रयोग नहीं होता। यहीं पर आस पास कुछ पुरानी दुकानोंका बाजार भी है और मां कालि का बाद में बना एक छोटा मन्दिर भी है। इस छोटे से बाजारको कांगड़ी बोली में, 'बुरलावाजार' या 'बुल्ला बाजार', अर्थात् नीचेका बाजार कहा जाता था क्योंकि यह बाजार नगर के मुख्य बाजार से मैदानको पार करके आता था। इसके आगे नगरका आधुनिक बड़ा चिकित्सालय का भवन है जिसके साथ पुराना चिकित्सालय भी जुड़ा हुआ है जिसके पास पंजाब नेशनल बैंक की नवीन इमारत और आगे कुछ दुकाने आनेके बाद जिला मुख्यालय हमीरपुर को पक्का मोटर मार्ग डाकघर और पुराने D.B. Middel Modle School के परिसर को छूता हुआ आगे निकल गया है। कथित आदर्श विद्यालयके पाससे दाईं ओर को एक और नवनिर्मित पक्का मोटर मार्ग पुलिस थाने को छूता हुआ व्यास नदी को नवनिर्मित पक्के पुलको पार करता हुआ आलमपुरकी ओर निकल जाता है। कथित आदर्श विद्यालय का पुरातन परिसार आज भी अपने परीक्षाफल, छात्रवृत्तियों एवं परले दर्जे के अनुशासन की याद दिलाता है। (लेखक इस आदर्श विद्यालय का छात्र रह चुका है, उन दिनों वरने कुलर फाईनल की परीक्षा हुआ करता थी और परीक्षा केन्द्र हमीरपुर हुआ करता था)। अब वहां राजकयी प्राथमिक विद्यालय चलता है। अब फिर मैदानकी परिधिकी ओर लौट आएं तो एक लम्बा बाजार आरम्भ हो जाता है जो व्यास नदीके पुराने पत्तन को ऊपर से झांकता हुआ समाप्त हो जाता हैं। यह चहल पहल भरा नगर का अभी भी मुख्य बाजार है जहां से प्रसिद्ध होलीके स्वांग निकालने की परम्परा आज तक चली आरही है। फिर ऊपर का बाजार शुरु हो जाता है जो बसोंके वड़े अड्डे तक फैला पड़ा है। यहां से भी होलीके स्वांग निकाले जाने की प्रथा है। यहां से टीहराकी पहाड़ी को अब महाराजा के राजमहल को छूता हुआ पक्का मोटर मार्ग जाता है जो पटलान्दर आदि ग्रामों से होता हुआ हमीरपुर तक चला गया है। कथित मोटर मार्ग के आरम्भ होते ही राजकीय कन्या उच्च विद्यालय भी स्थित है। बस अड्डेके साथ ही एक

पुरानी बड़ी सराय स्थित है जो अब अनाथालय में बदल दी गई है। इस अनाथालयके आगे विवाह-शादियों में प्रयोग में आने वाले सुविधा सम्पन्न पक्का नवीन जनवास (जंजघर) स्थित है जिसके निर्माणमें स्थानीय सेठ स्व० तुलसी राम फलू का नाम विशेष रुप से उल्लेखनीय है। इसीके निकट ब्राह्मण सहकारी बैंक अपनी नई इमारतमें स्थित है साथ ही नवनिर्मित बाल विहार और जल-पान गृह भी है। नगरमें विद्युत प्रकाश एवं जलापूर्ति की समुच्चित व्यवस्था है। यहां तक कि पास पड़ोस के ग्रामोंमें बिजली, पानी और शिक्षा संस्थाएं भी खुली हैं जहां डी०ए०वी० महिला महाविद्यालय भी नारी शिक्षाके क्षेत्र में विशेष भूमिका निभा रहा है। कहना न होगा कि नगर में आजकल शिक्षाका प्रचार प्रसार उल्लेखनीय है। यदि बन्द पड़ी पुरानी संस्कृत पाठशाला का जीवनोद्धार कर दिया जाए तो शिक्षा के क्षेत्रमें सोने पर सुहागेका काम हो जाये जहां प्राज्ञ, विशार्द, रत्न, भूषण और प्रभाकर की कक्षाएं खोलें।

नगर की जनसंख्या उत्तरोत्तर बढ़ जाने से और पथ परिवहन यातायातका तीव्रतर विकास होने से नगरका पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है जिसकी रोकथाम करना जन स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त अनिवार्य है।

नगर की परिक्रमा करते समय एक छोटे मोटर मार्ग का निर्माण उल्लेखनीय है जो सैनिक स्कूलके छात्रावास से आरम्भ होकर राधा-कृष्ण मन्दिर, बस अड्डे से होता हुआ जिला मुख्यालय हमीरपुर को चला गया है। मैदान की परिधि पर निर्मित यह मार्ग इसी उद्देश्यकी पूर्ति करता है कि मैदान सुरक्षित रहे और नगर की शोभा बनी रहे।

पर्यटकोंसे :—

अखिल हिमाचल प्रदेश अपनी भरपूर प्राकृतिक छटा केलिये विश्व प्रसिद्ध है। पर्यटनकी दृष्टिसे दर्शनीय स्थानोंमेंसे एक पहाड़ी महाराजा संसारचन्दकी कार्यस्थली सुजानपुर टीहरा भी है। जिसकी जानकारी बहुत कम सैलानियोंको है। न केवल यह सैर-सपाटेके लिये उपयुक्त स्थान है बल्कि ज्ञान बढ़ाने वाला यह एक प्राचीन ऐतिहासिक स्थल भी है।

सुजानपुर टीहराको जाने केलिये पालमपुर, हमीरपुर, पठानकोट से बस सेवा भरपूर उपलब्ध है । यहां तक कि दिल्ली, हरिद्वार, चण्डीगढ़, अमृतसरकी बसें यहांसे होकर जाती हैं । वैसे भी पथपरिवहन निगमने समस्त हिमाचल प्रदेशमें बसोंका जाल बिछा रक्खा है । निजी बसोंकी भी यहां भरमार है जिससे यह पर्वतीय राज्य यातायातकी जटिल परिधिसे बाहर आ गया है । राष्ट्रका मुकट-काश्मीर तथा राजधानी दिल्ली, चण्डीगढ़की ओर से आने वाले सैलानी पठानकोट पहुंचकर, रेलगाड़ीको छोड़कर, बस द्वारा, राष्ट्रीय उच्च मार्ग पर, नूरपुर—नगरोटा बगवां होते हेये अन्तमें ठाकुर द्वारेपर मुड़कर व्यास नदीपर बने पक्के पुल को पारकर सुजानपुर टीहरा आ सकते हैं । शिमला, मनाली, कुल्लू, मण्डीकी ओर से आने वाले सैलानी हमीरपुर से या फिर राष्ट्रीय उच्चमार्गको अपनाकर बस द्वारा बैजनाथ, पालमपुर होते हुए ठाकुरद्वारेके पाससे गुजरते हुए व्यास नदीपर बने नवनिर्मित पुलको पारकर सुजानपुर टीहरा पहुंच सकते हैं । जो सैलानी पठानकोट पहुंचकर (Nar.ow Guage) छोटी लाईनकी गाड़ीमें बैठकर, बर्फीले-पर्वतीय दृश्योंका आनन्द उठाना चाहें, उन्हें नगरोटा बगवां या पालमपुर (हि० प्र०) (मारंडा, पालमपुर रेलवे स्टेशन) आकर, क्रमश: 92 और 114 किलोमीटरकी दूरी तय करके कथित गाड़ी छोड़ देनी होगी और फिर वहांसे बस द्वारा ठाकुर द्वारे-भवारना-आलमपुरके आगे व्यास नदीपर बने आधुनिक, रमणीय पक्के पुलको पारकर सुजानपुर टीहरा पहुंचना होगा । यहां आकर सैलानी, सरकारी विश्राम गृह तथा नव-निर्मित-भव्य जंज-घर और बस अड्डेके पास ही कम-खर्चीले होटलोंमें ठहर सकते हैं । कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि सैलानी यहां पहुंचकर बहुत आराम का अनुभव करता है जहां के लोग भलेमानुष और सादा प्रकृतिके हैं । यदि आदमी जरा भी शारीरिक श्रमके गौरवमें विश्वास रखता हो तो सुजानपुर टीहरामें आनेवाले सैलानियोंको आते समय और जाते समय कुलीपर कुछ भी खर्च नहीं करना पड़ता है । फिर भी कुली आसानी से बस-अड्डे पर उपलब्ध हैं । सैलानियोंको यहां भाषाकी समस्या

नहीं है क्योंकि स्थानीय पहाड़ी बोली हिन्दी के आस-पास ही है।

अब कांगड़ा घाटी में जिला मुख्यालय धर्मशालाके पास गग्गल नामक स्थानपर नवनिर्मित हवाई अड्डा है। अब सैलानी दिल्ली से चण्डीगढ़ होते हुए सप्ताह में तीन वार मंगलवार, वीरवार और शनिवारको वायुदूतकी सेवाका प्रयोग कर गग्गल हवाई अड्डे पहुंचकर, वहां से बस द्वारा राष्ट्रीय उच्चमार्ग अपनाते हुए मटौर—नगरोटा बगवां होते हुए ठाकुरद्वारे पर मुड़कर आलमपुर कस्बेको पार करते हुए सुजानपुर टीहरा पहुंच सकते हैं। जुलाई 1991 से कथित वायुदूतकी समय सारिणीमें परिवर्तन किया गया है। अब यह उड़ान दिल्ली से प्रातः 11 बजे शुरु होकर चण्डीगढ़ 11-55 पर पहुंचेगी। वहांसे दोपहर बाद 12-15 पर शुरु होकर एक बजे बाद दोपहर गग्गल हवाई अड्डा पहुंचेगी। फिर गग्गलसे बाद दोपहर 1-20 पर शुरु होकर सीधे दिल्ली 2-40 पर पहुंचेगी।

नई दिल्लीसे गग्गल और चण्डीगढ़ से गग्गलका किराया क्रमशः 882 रुपये और 465 रुपये बताया जाता है। हो सकता है निकट भविष्य में यह उड़ान शिमला तक भी जाए।

(अब गग्गल हवाई अड्डे का नाम बदलकर, 'कांगड़ा-हवाई अड्डा', कर दिया गया है।)

परिशिष्ट

(i) हिमाचल का हरिद्वार :--

कुन्दद्वार (विष्णु का द्वार) या कुली द्वार, व्यास नदी को नव-निर्मित पक्के पुल द्वारा पार करके (नहीं तो पहले किश्ती द्वारा ही कथित नदी को पार किया जाता था) कस्वा आलमपुर से होते हुए 12 कि० मी० की दूरी तय करके पहुंचा जा सकता है जहाँ पर प्रमुख पड़ाओ स्कोह ग्राम पड़ता है। इस कच्चे मार्ग पर मन्द-खड्ड को भी पार करना पड़ता है जो वरसातमें भयंकर रूप धारण कर लेती है। यदि व्यास नदी को पार करने की बजाए उसके किनारे-2 ही चलना हो तो राजवानी सुजानपुर टीहरा में कथित नदी पर नवनिर्मित पक्के पुलके ठीक पहले सिरे से अलग पोता हुआ दाई ओर को एक कच्चा मार्ग जाता है (इसी मार्ग पर कथित पुल से कुछ ही दूरी पर महाराजा द्वारा स्थापित करवाई गई एक सुरक्षा-चौकी के भग्नावेष आज भी मिलते हैं जिसे, 'मोरी दरवाजा', कहते हैं जहां सैनिकों के अतिरिक्त तोप आदि भी रखी गई थी ताकि इस ओर से राजधानी पर किसी प्रकार का आक्रमण हो तो उसे रोका जा सके) जिसके मुख्य पड़ाओं वगेहड़ा ग्राम और पुआड़ा ग्राम होते हुए आठ कि०मी० की दूरी तय करनी होती है। अव तो इस नवनिर्मित कच्चे मोटर मार्ग पर वस सेवा भी लम्बा ग्राम तक उपलब्ध है कथित कुंद्वार जिसका नाम विगड़ते-विगड़ते पहाड़ी बोली में, 'कुलीद्वार' या 'कुल द्वार', हो गया जहां पास वहती व्यास नदी के तटपर शिव मंदिर निर्मित है और शिवरात्रि के पावनावसर पर हर वर्ष मेला लगता है। इस पवित्र स्थान के वारे में जन श्रुति है कि एक ऋषि ने यहां, 'हरि द्वार', के महत्व का तीर्थ सृजन करना आरम्भ किया। उन दिनों कथित मंदिरको छूती व्यास नदी को 'व्यास गंगा', कहा जाता था। उस सृजन काल में मंदिर को केवल एक अन्तिम सीढ़ीको व्यास-गगा ने छूना शेष था कि ऊषाकाल होते-होते एक प्राणीने उस ऋषिको इस महान-सृजन को करते देख लिया। वश उसी समय वे ऋषि वहांसे चल दिये, किसी को भी वहां कानों कान खबर न हुई और इस प्रकार कुंद द्वार

(विष्णु द्वार) हरि द्वार के महान.पावन-तीर्थके महत्व से सदा-सदा के लिये वंचित हो गया ।

यहां लगने वाले मेलेके पावनावसर पर लोग व्यास नदी का पत्तन पार कराते थे और बेड़ा (बड़ी किश्ती) छुड़ाते जिसका समूचा शुल्क प्रति व्यक्तिके अनुसार वे स्वयं वहन करते। (लेखकने बचपनमें वह सारा दृश्य उस पावन-उल्लसित मेलेका स्वयं देखा है। वर्षों बीत जानेके बाद आज भी उसकी स्मृति हृदय-पटलसे नहीं हटती)।

(ii) 'कोटला', हिमाचल प्रदेश, जिला कांगड़ा स्थित के काईस्थ (दीवान) परिवार भटनागर उपजाति और गालव गोत्र से थे। कांगड़ा राज्य की दीवानगी इनकी पैतृक सम्पत्ति रही। उन दिनों अमीर लोग दो शादियां भी कर लिया करते थे। ऐसा लगता है दीवन बफूमलने भी ऐसे ही दो शादियां की थीं। उनकी बड़ी पत्नी से दीवान सर्वदयाल बड़े और दीवान हरदयाल छोटे पुत्र हुए। छोटी पत्नी से दीवान विट्ठूराम और दीवान दूलोराम थे। दीवान हरदयाल का जन्म 1854 में और मृत्यु 1894 में हुई। वे जोधपुर राज्यके प्रधान मन्त्री थे। दीवान सर्वदयाल कांगड़ा (पंजाब) के कानूनगो-तहसीलदार रहे। इन्होंने वंशावली संबंधी उर्दू में एक पुस्तक लिखी और 'इतिहास कांगड़ा राजगान' नामक पुस्तक की रचना भी की जिस में स्थानीय रीति-रिवाजों एवं परिवारों का रुचिकर वर्णन है। बताया जाता है कि यह पुस्तक कटोच वंश के 486वें राजा जयचन्द के शासनकाल में 1883 A.D. में लिखी गई। वे लम्बा ग्राम रियासत के अधीक्षक भी थे। दीवान सर्वदयाल का पुत्र दीवान बिसन दास बैरिस्टर थे। दीवान हरदयाल का पुत्र दीवान रोडामल भी बैरिस्टर, थे दीवान विट्ठूराम के दो पुत्र दीवान संसारचन्द (Advocate) और दीवान धर्मचन्द थे। दीवान दूलोराम के पुत्र दीवान प्यारे लाल (Criminal Superintendent) और दीवान टेक चन्द और तीसरे पुत्र थे दीवान मेहर चन्द। दीवान रोडा मल के पुत्र दीवान प्रीतम चन्द थे। दीवान संसारचन्द के दो पुत्र दीवान सोम प्रकाश और दीवान ब्रह्म प्रकाश हैं। दीवान प्यारे

लाल के पुत्र दीवान सुरेन्द्र लाल, कांगड़ा निवासी (Retired forest Range officer) हैं। दीवान टेक चन्द के पुत्र दीवान राजिन्द्र कुमार और दीवान सतीश कुमार हैं।

(iii) सुजानपुर के जैन परिवार —

जैसे कि पहले बताया जा चुका है कि कांगड़ा महा दुर्गमें जैन मन्दिर है जहां भगवान आदिनाथकी मूर्ति स्थापित है। उन दिनों जैन धर्मके यात्री यहां धार्मिक यात्राएं करते रहे हैं। हो सकता है इसीके फल स्वरुप कुछ जैन परिवार महाराजा संसारचन्द की सुन्दर राजधानी सुजानपुरमें बस गये। ये परिवार आज भी वहां के मुख्य बाजार के मध्य में एक ओर बसे हैं। ये समृद्ध परिवार सोना, चांदी, देसी दवाईयां, करियाना और मनयारीकी दुकानें करते आ रहे हैं। उनमें कुछ अब सरकारी कर्मचारी भी हैं। ये परिवार भावड़े के नाम से भी जाने जाते हैं।

भावड़ा—जैन स्वर्गीय कालूराम मनयार का पुत्र लाजो था। स्व० शिवदयाल स्वयं करियाना, देसी दवाईयों, पंसारी की दुकान करते थे। इनके आगे चलकर चार पुत्र हुए—अमरचन्द (चांदी, सोना), रत्नचन्द (चांदी, सोना), तथा त्रिलोकचन्द और दीवान चन्द (पंसारी, देसी दवाईयों) की दुकान करते थे। इनकी सन्तानों ने भी अब ये ही व्यवसाए अपनाए हैं। आज भी जैन साधु-साधवियां इस ओर यात्राए करते रहते हैं।

Indian Institute of A...
111427
ACC
DA 13/3/03
SHIML

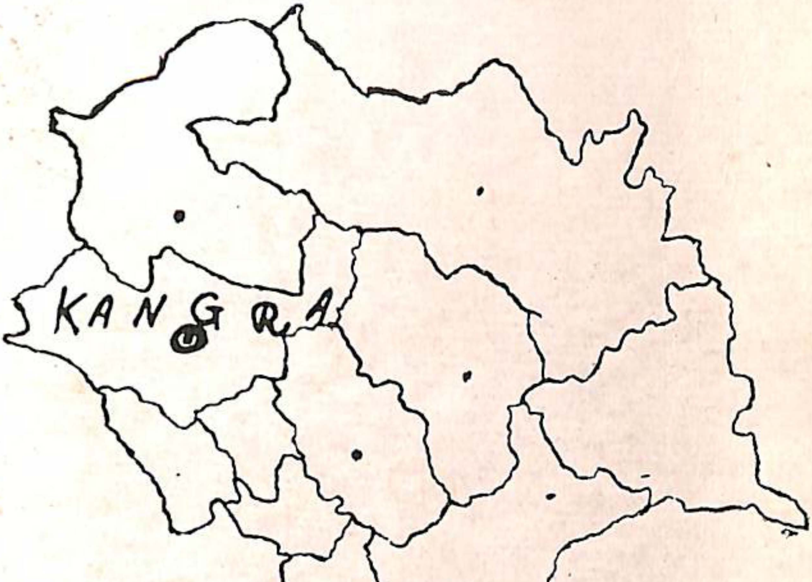

मान चित्र हिमाचल प्रदेश

Library IIAS, Shimla
H 954.52 G 959 L
00111427